पाराशर्यं पामपुरुषं विश्ववेदैकयोनिं
विद्याधारं विमलमनसं वेदवेदान्त वेद्यम्
शश्वच्छान्तं शमितविषयं शुद्धबुद्धिं विशालं
वेदव्यासं विमलयशसं सर्वदाऽहं नमामि

पन्ना, ६/२२०/८२

पाराशर्यं पामपुरुषं विश्ववेदैकयोनिं
विद्याधारं विमलमनसं वेदवेदान्त वेद्यम्
शश्वच्छान्तं शमितविषयं शुद्धबुद्धिं विशालं
वेदव्यासं विमलयशसं सर्वदाऽहं नमामि
पद्म, ६/220/८२

शैव तीर्थ

वैष्णव, वराह पुराण में वैष्णव तीर्थों के अतिरिक्त शैव क्षेत्रों और तीर्थों का भी वर्णन किया गया है। किन्तु वैष्णव तीर्थों का विशेष महत्व था।[1] निम्नलिखित तीर्थों को शैव क्षेत्र (रुद्राश्रिताः क्षेत्राः)[2] कहा गया है —

चक्र, वाराणसी, अट्टहास, नैमिष, भद्रकर्णह्रद, नगर द्विरण्ड, मुकुट (अथवा कुक्कुट, पा०), मंडलेश्वर, केदार, देवदारु वन, जालेश्वर (या यागेश्वर), दुर्ग (महाबल). गोकर्ण, जाल्मेश्वर, और एकलिंग।[3]

१- वराह, १२२/१८ यहां अन्य रुद्रक्षेत्रों से कोकामुख का विशेष महत्व इसीलिये कहा गया है कि यह भागवतों (वैष्णवों) का तीर्थ था।

२- वही, १२२/१८

३- वही, १२२/१२- १५
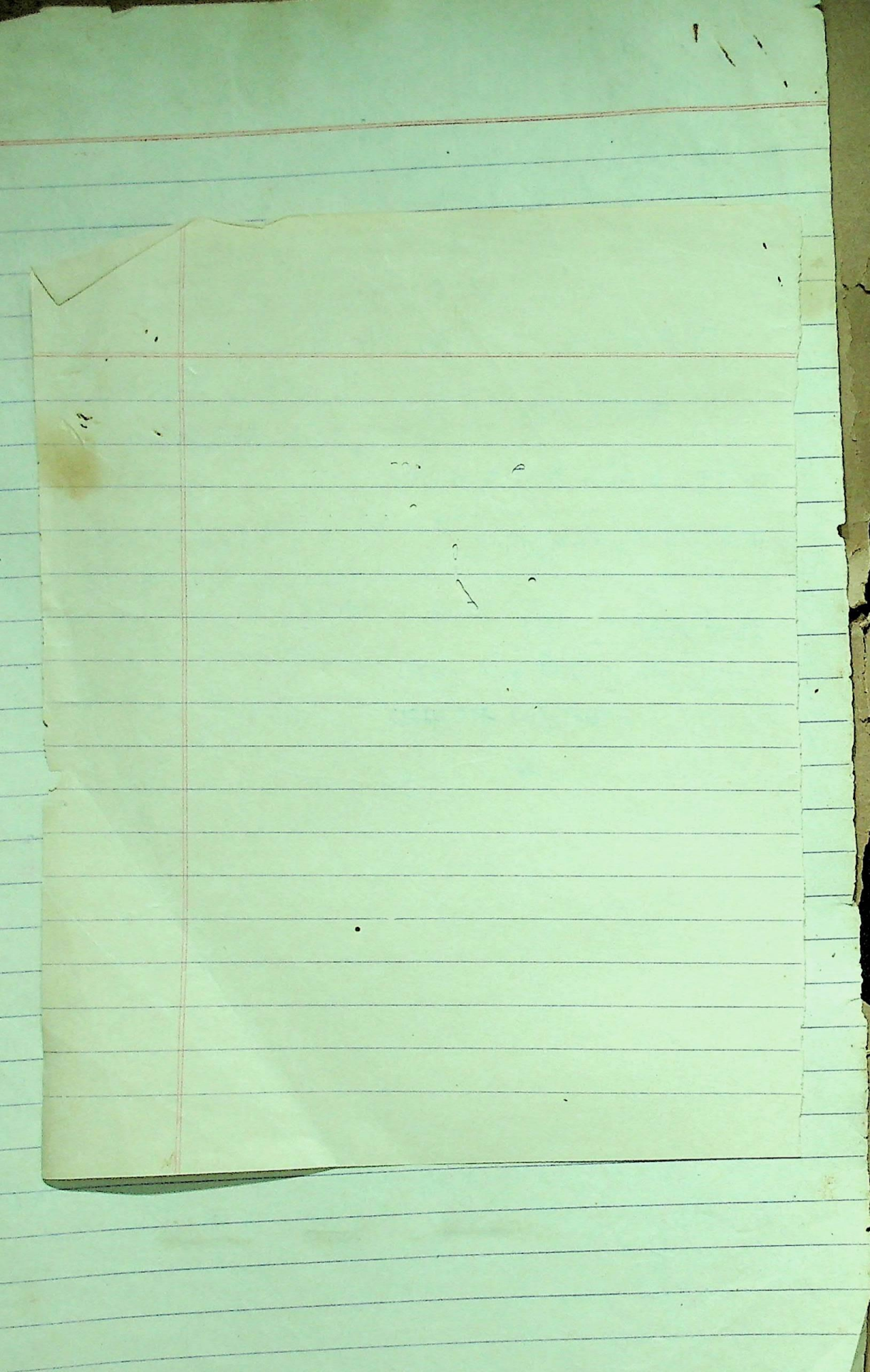
तीर्थधर्म एवं तीर्थ

सभी धर्मों में कुछ विशिष्ट स्थलों की पवित्रता पर बल दिया गया है और वहां जाने के लिये धार्मिक व्यवस्था बतलायी गयी है या उनकी तीर्थयात्रा करने के विषय में प्रशंसा के वचन कहे गये हैं।........ ~~भारतवर्ष~~ में पवित्र अथवा तीर्थ के स्थलों पर देवों का निवास रहता है, अतः इस भावना से उत्पन्न स्पष्ट लाभ एवं विश्वास के कारण प्राचीन धर्मशास्त्रकारों ने तीर्थों की यात्राओं पर बल दिया।[1] तीर्थयात्रा (तीर्थानुसरण) को भी एक सामान्य धर्म माना गया है।[2] पुराणों में भी तीर्थ-विवेचन किया गया है[3] तीर्थों में सूर्य, शिव, गण (गणेश), देवी और विष्णु स्थित रहते हैं।[4] ये मुख्य पांच देवता हैं। अन्य देवताओं - कार्तिकेय[5] तथा महात्माओं से संबद्ध पवित्र स्थान, यथा व्यास तीर्थ आदि भी महत्वपूर्ण थे। इन तीर्थों में स्नान, दान, जप, तप, पूजा, श्राद्ध, पिण्डदान आदि धार्मिक कर्मों का अक्षय पुण्य होता है।[6] इन पुण्य कर्मों के कर्मक्षेत्रों, तीर्थों के अतिरिक्त मानवदेह ही वह साधनभूमि है जिसमें सभी तीर्थ - ब्रह्मध्यान (परं तीर्थ), तथा इन्द्रियनिग्रह, दम, भावशुद्धि-सर, ज्ञानहृद, ध्यानजल आदि तीर्थ - हैं जिनमें निमज्जन करने से राग और द्वेष के मल नष्ट होते हैं। इस प्रकार (इन उपर्युक्त) मानसतीर्थों में स्नान करने से ही सद्गति प्राप्त होती है।[7] "सत्य ही है कि आत्मा संयमरूपी जल से पूर्ण नदी है, जो सत्य से प्रवहमान है, जिसका शील ही तट है और जिसकी लहरें दया हैं; उसी में गोता लगाना चाहिए, अन्तःकरण जल से स्वच्छ नहीं होता।[8] जो उस परमेश्वर को जानता है और जिसके चित्त में वही है तथा जो आत्मस्थ (देहगेह बुद्धिहीन तल्लीन) होकर विचार-जल में मग्न रहते हैं, उन्हें तीर्थों तथा आश्रमों से क्या प्रयोजन है।" अतः स्पष्ट है कि तीर्थधर्म के पालन करने तथा तीर्थस्थ महात्माओं - व्यास, शुक, सुमन्तु आदि - के संग से हृदय की ग्रन्थि शिथिल होकर चित्त आत्मबोध की ओर उन्मुख होता है।

1. ध० शा० इ०, भाग ३, पृ० १२७-१३००
2. वही, पृ० १३००, ~~विष्णु~~
   विष्णुस्मृति २।१६ : क्षमा सत्यं दमः शौचं दानमिन्द्रियसंयमः।
   अहिंसा गुरुशुश्रूषा तीर्थानुसरणं दया ॥
   ~~विष्णु~~ वि० ध०, २८०।२
   ध० शा० इ०, भाग ३, पृ० १३०८
3. पौ० ध० स०, पृ० १२२-१५१
   ग० पु० अ०, पृ० २७१-२७६
4. गरुड़, ८१।१२
5. वही, ८१।१५
6. कुमार संभव, ६।५६
7. वही, ८१।१३, २५
8. वही, ८१।८२-८३

(६) वामन (सरोमाहात्म्य), २२।~~२३~~-२४
ब्रह्म, स्कन्द ४।१।६।२८-४५,
पद्म, ६।२३७।११-२८

तीर्थवर्ग एवं तीर्थसंग्रह

भारत के धार्मिक जीवन में यज्ञ, दान आदि के समान ही तीर्थस्नान का भी[1] महत्व है। तीर्थसेवा को नवधाभक्ति का एक प्रकार कहा गया है।[2] इस महत्व के कारण ही विभिन्न कथाएं तीर्थ-माहात्म्य के साथ सम्बद्ध हो गयी हैं। इन कथाओं में तीर्थ-प्रभाव को दिखाया गया है। ऐसा विश्वास था कि रमापति की शरण की भांति ही 'सत्तीर्थमरणं' (सत्तीर्थविषये मृत्यु:)[2] से भी सद्गति प्राप्त होती है।[2]

१- वराह, २१७/१७-१८

२ पद्म, ६/२००/६७

३ वही, ६/२००/६८

(2) पद्म, ६/२८०/१३४

कुब्जाम्र 3 सौकरक्षेत्र, चित्रकूट, अयोध्या, प्रयाग,

तीर्थों को ही देवस्थान भी कह सकते हैं, जहां भगवान मूर्त्याकृति में निवास करता है।[1] ऐसे देवस्थान हृषीकेश, कुब्जाम्र, कोकामुख, बदरी, लोहार्गल,[2] नैमिष, पुष्कर, पुरुषोत्तम,[2] गया, हरिक्षेत्र शालग्राम, मन्दार, द्वारका, प्रभास, मथुरा, सानन्दूर (दक्षिण-भारत) आदि थे। ये प्राय: वैष्णव तीर्थ थे। इनमें भी शिव, सूर्यादि अन्य देवताओं के भी तीर्थ थे। वाराणसी, केदार, गोकर्ण, एकलिंग और नेपाल आदि प्राय: शैव तीर्थ थे। कालप्रिय, मूलस्थान, आदि सूर्य के प्रधान तीर्थ थे।

इन तीर्थों में तीर्थयात्री भिन्न भिन्न धार्मिक क्रियायें - स्नान, पूजन, चिन्तन (ध्यान) और प्राणत्याग ~~(प्रायश्चित~~ आदि - भी करते थे। एक ही क्षेत्र में विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना का साक्ष्य मिलता है। मथुरा क्षेत्र में विष्णु के अतिरिक्त शिव, सूर्य, देवी, गणेश, ~~कार्तिकेय~~ आदि देवताओं की पूजा-प्रचलन का साक्ष्य मिलता है। स्थानाभाव के कारण यहां हम तीर्थों का सम्यक विवेचन करने में असमर्थ हैं। इसके लिये तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की ही आवश्यकता है। नीचे हम तीर्थसंग्रह (तीर्थ-तालिका) और देश विभाग में स्थिति के अनुसार तीर्थ-विवरण दे रहे हैं। धर्म अथवा देवता से सम्बद्ध यथा वैष्णव और शैव क्षेत्रों अथवा तीर्थों का भी विभेदन किया गया है।

1- वराह 140/1-2
2 वही, 140/4-5
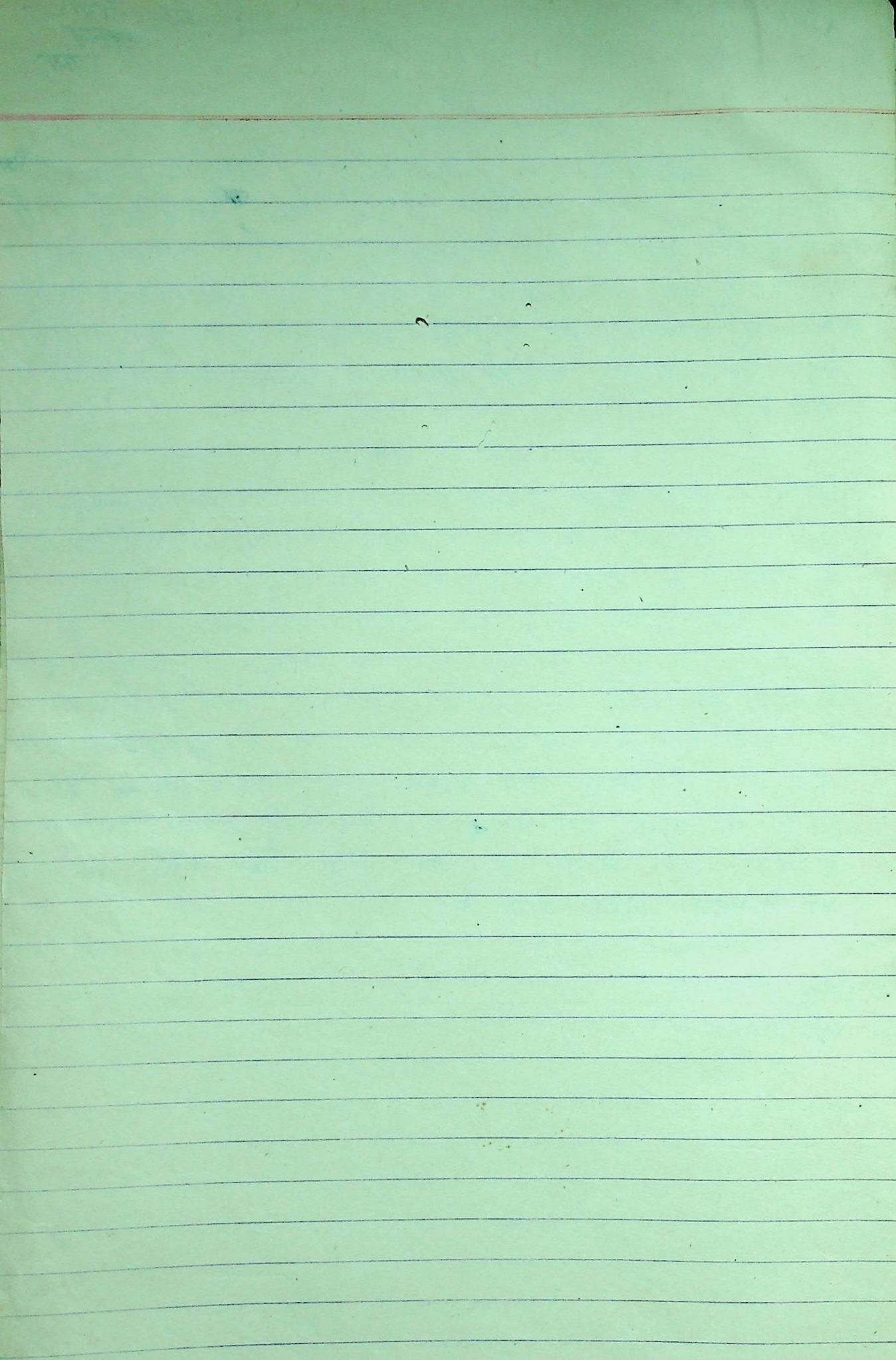
हिमालय और इसके तीर्थ

शंकर-पार्वती से सम्बन्धित[१] भूधरेश्वर हिमवान् पवित्र क्षेत्र है जहां से पवित्र गंगादि नदियाँ निकलती हैं।[२]

१- गौरीगुरु हिमवान् शंकर का श्वसुर है (वराह २१५/५५)।

२. वराह, २१५/५५

हिमालय के तीर्थ

अस्तु देवतात्मा नगाधिराज हिमालय पावन है।[1] कालिदास भी मानते हैं कि हिमालय ऋषियों के सम्पर्क में आकर (कु०सं०, ६/५३-५५) महान् तीर्थ बन गया। तीर्थ वही है जहां महात्मा लोग आकर बैठें और रहें।[2] वे हिमालय की तुलना विष्णु से करते हैं। हिमालय से निकल कर निर्मल नदियाँ अपनी पवित्रता से सकल संसार को पवित्र करती हैं।[3] विष्णुपदी गंगा प्रसिद्ध ही है। वराह पुराण के अनुसार भी गंगा, यमुना, कौशिकी, गंडकी, सरयू आदि पवित्र नदियाँ[4] तीर्थ माने गये हैं। वराह पुराण में कुब्जाम्र माहात्म्य में गंगाद्वार, हृषीकेश, और मायातीर्थ), लोहार्गल - माहात्म्य (हिमाचल पर स्थित तीर्थों का माहात्म्य) तथा बदरी - माहात्म्य (बद्रीनाथ और इस के आसपास के तीर्थों का वर्णन) का वर्णन किया गया है। नेपाल (श्लेश्मातक वन) तथा उत्तरी बिहार में स्थित तीर्थों में उत्तरी गोकर्ण एवं शालिग्राम क्षेत्र अत्यन्त पवित्र हैं। भूधरराज मन्दर गिरि के उत्तर में पवित्र मुंजवान नाम का शिखर है।[5] उसी रमणीक पर्वत पर धर्मारण्य का तपःक्षेत्र था जहां मुनिगण रहते थे।[6] वहीं गिरिजा के साथ भगवान शंकर भी नित्य निवास करते हैं।

१- कु०सं०, ६/५६ : अद्य प्रभृति भूतानामधिगम्योऽस्मि शुद्धये।
यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते ॥

कु०सं० ६/५२

२- वही, ६/६७ : स्थाने त्वां स्थावरात्मानं विष्णुमाहुस्तथा हि ते।
चराचराणां भूतानां कुक्षिराधारतां गतः ॥

गीता, १०/२५ : 'स्थावराणां हिमालयः' अर्थात् मैं स्थावरों में हिमालय हूँ।

३- कु०सं०, ६/६९-७०

४ वराह १८७/१०१-१०२

५- वही. २१३/१३

६ वही, २१३/२५-२८

55.

(2) Himalaya

परमा पुण्या गंडकी (हिमाद्रौ सा देवी गंडकी लोकतारिणी)[2] में प्राप्त शालग्राम-शिला, तथा गंडकी, देविका और ब्रह्मपुत्री (सरस्वती) का संगम (त्रिवेणी)[2] और इस क्षेत्र के अन्य तीर्थ भी अति प्रसिद्ध रहे हैं।
गौतम मुनि ने हिमवन्त महागिरि पर शिव की आराधना की थी। शिव की जटाओं में स्थित गंगा के ही एकांश को वे दक्षिणापथ में ले गये थे, जहां वह गौतमी (गोदावरी) के नाम से प्रसिद्ध हुई।[3] इससे शिव, हिमालय एवं गंगा का महत्व ज्ञात होता है।

1 वराह, १४४/५२
2 वही, अ० १४४ एवं अ० १४५
3 वही, ७१/३१-४४,

४
रजिस्टर पेज

बदरी - विशाला ~~बदरी~~

हिमालय पर स्थित (हिमवतः पृष्ठे) अतिप्रसिद्ध बदरी (बदरीति विख्याता) देवताओं के लिये भी 'दुर्लभ' कही गयी है।[1] परन्तु हिमकूट-शिला पर स्थित विश्वतारिणी बदरी भक्तों के लिये सुलभ है। जिसे इसकी प्राप्ति हो जाती है वही कृतकृत्य पुरुष है।[2] इसे ही वरदा विशाला[3] कहा गया है। गन्धमादन पर्वत की घाटी में स्थित बदरी पुण्य तपोभूमि है।[5] यहां नर नारायण, देवता,[6] राजा विशाल एवं व्यास[8] ने तप किया था। राजा विशाल के नाम पर ही इसे विशाला (बदरी-विशाला) कहा जाता है।[9] यहां, इस क्षेत्र में, निम्नलिखित अन्य तीर्थ स्थित थे —

ब्रह्मकुण्ड (वराह, १४१४-६) में स्नान करना और प्राणत्याग करना पुण्य कर्म था।

अग्निसत्यपद (वराह, १४१।७-७) - यहां शृंग-त्रय (त्रिशृंग शिखर) से तेज धारा गिरती थी। यहां भी स्नान एवं प्राणत्याग के लिये प्रसिद्ध था।

इन्द्रलोक (वराह, १४१।१०) - यहां इन्द्र ने नारायण को परितुष्ट किया था। ~~यहां भी एक धारा गिरती थी।~~

१- वराह, १४५।१, १५०।४

२- वही, १४१।२-३, आज भी लोगों का यही विचार है।

३- वही, २।५७ (४) वही, ४८।६(२) - ७(१)

५- वही, २।५७-५८, १४१।५३-५५.

६ वही, ४८।८, १६

७- वही, ४८।६-१६

८ वही, १२५।८

९ वही, ४८।२३

धर्म तीर्थ (वराह, १४१/११-१३) - यहां एक बड़ी धारा गिरती है। (3/2)

पंचशिख (वराह, १४१/१४-१६) - यहां पंचश्रृंग से पांच धारायें गिरती थीं। यहां पंचस्रोत में स्नान किया जाता था।

चतुःस्रोत (वराह, १४१/१७-२०) - यहां चार धारायें गिरती थीं।

वेदधार (वेदधारा) (वराह, १४१/२१-२३) - यह तीर्थ वेदों से सम्बन्धित है।

द्वादशादित्य कुण्ड (वराह, १४१/२४-२७) - यह सूर्य कुंड और सूर्य तीर्थ था जहां द्वादशादित्यों की स्थापना की गयी थी।

लोकपाल (वराह, १४१/२८) - यहां लोकपालों की स्थापना की गयी थी।

स्थलकुंड (वराह, १४१/२९-३१) - यह वृहत्कुंड सोम से सम्बन्धित है। मेरु-तीर्थ (वराह, १४१/३२-३५) मेरु और मानसोद्भेद (वराह, १४१/३६-३८) क्रमशः मानस से सम्बन्धित हैं।

पंचशिर (वराह, १४१/३९-४४) ब्रह्मा से सम्बन्धित तीर्थ है।

सोमाभिषेक तीर्थ (वराह, १४१/४५-४७) तथा सोमगिरि (वराह, १४१/४८-५०) सोम से सम्बन्धित तीर्थ हैं। सोमगिरि के पास एक धारा गिरती थी।

इस क्षेत्र को विशाल-अरण्य भी कहते थे (अरण्ये विशाले तु एतत्ते कथितं मया)[१]

१- वराह, १४१।

उर्वशी कुंड (वराह, १४१/५२-६४) - यहां नारायण की दाहिनी जंघा को फाड़ कर उर्वशी का जन्म हुआ था।

बदरी-आश्रम का माहात्म्य पुण्याख्यान है जिसका श्रवण करना एवं पढ़ना भी पवित्र था।[१]

१- वराह, १४१/६५-६६

(4)

कुब्जाम्रक मा० (अ० १२६)

(स्थान के पावन के विशेष: पादसमाश्रय)[1]

विष्णु-पदों से पवित्रीकृत कुब्जाम्रक तीर्थ गंगाद्वार में गंगातट पर स्थित[2] था। यहां विष्णुभक्त रैभ्य मुनि का आश्रम था। मुनि की दीर्घ तपस्या एवं आराधना से प्रसन्न होकर भगवान गंगाद्वार में आम्रवृक्ष के रूप में प्रकट हुए। विष्णु-आश्रित वह आम्रवृक्ष कुब्ज होगया। इसी से लोग उसे कुब्जाम्र कहने लगे।[3] रैभ्य मुनि ने कुब्ज स्वरूप भगवान की वन्दना करते हुए उनसे वहीं निवास करने को कहा, "हृषीकेश! मेरी इच्छा है कि यह स्थान आपका हो"।[4] अतः, प्रतीत होता है कि, गंगाद्वार (हरिद्वार) के निकट हृषीकेश का स्थान[5] (कुब्जाम्र) आधुनिक हृषीकेश ही होगा। ~~गंगाद्वार का माहात्म्य वर्णन करते हुए हरिपद~~ इस पवित्र तीर्थ में किसी व्यक्ति की मृत्यु होने से भी उसे सद्गति प्राप्त होती है।[6] वराह पुराण में इस तीर्थ का माहात्म्य बताते हुए यहां स्थित अन्य तीर्थों का भी वर्णन किया गया है।[7]

कुब्जाम्र क्षेत्र

1. वराह, १२६/१७० (१)
2. वही, १२६/१७२
3. वही, १२६/७-१२
4. वही, १२६/१८: यावल्लोका धरिष्यन्ति तावच्चैव महाप्रभो। स्थानन्तव हृषीकेश इच्छामि मधुसूदन॥
5. वही, १२६/१०; हृषीकेश का वर्णन अन्यत्र (वराह, १४६/६३-६४) कुरुक्षेत्र माहात्म्य में किया गया है।
6. वही, १२६/१०-१२
7. वही, १२६/२३-२४, यह भी पुण्यस्थान था (वराह, १२६/२१२-२२०)
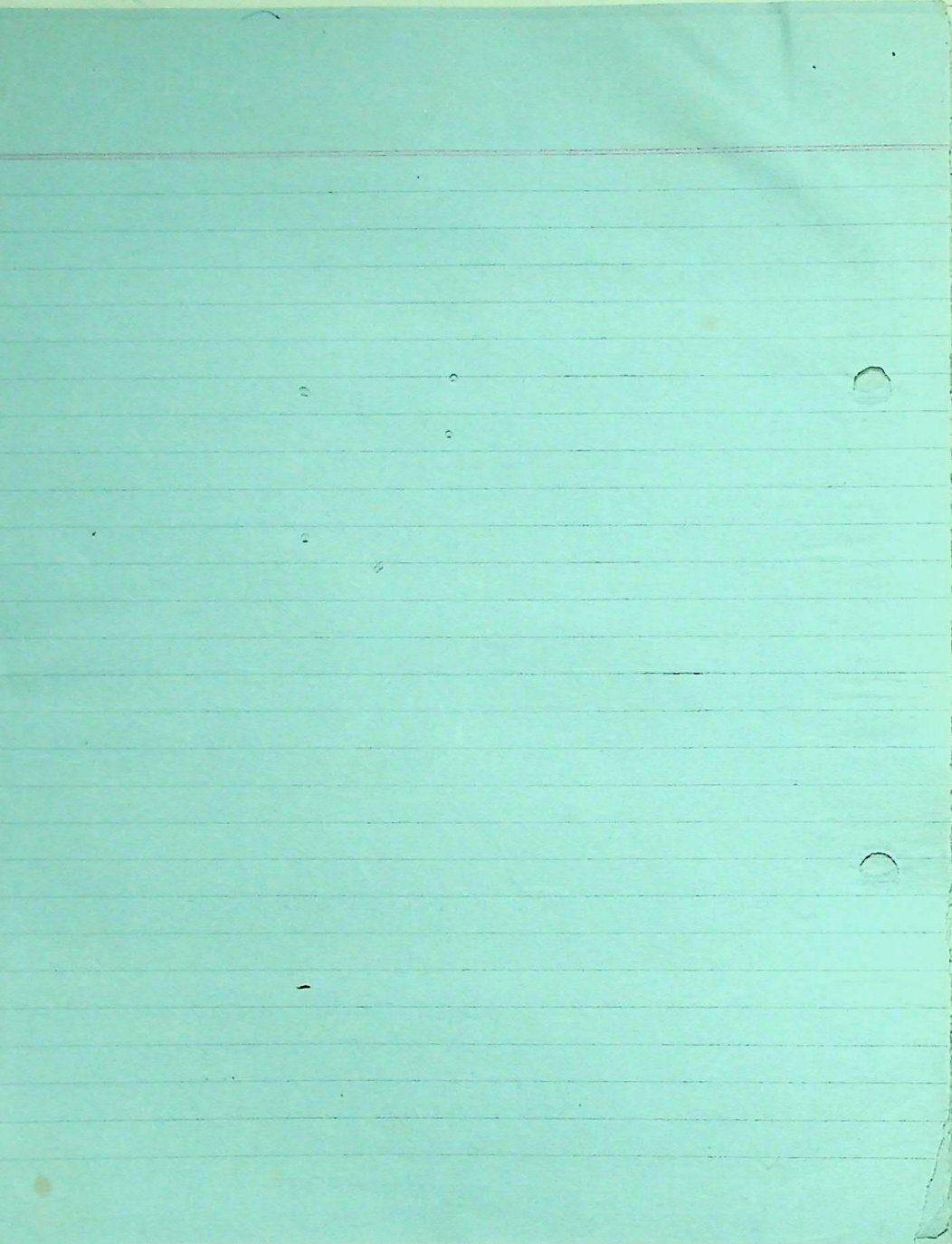
कुब्जाम्र क्षेत्र में स्थित अन्य तीर्थ

~~यहां कुमुदाकार, मानस तीर्थ, माया~~

कुमुदाकार (वराह, १२६।२६-२८), मानस तीर्थ (वराह, १२६।२७-३२) मायातीर्थ (वराह, १२६।३३-३६, २०७), सर्वात्मक तीर्थ (वराह, १२६।३७-३७), पूर्णमुख तीर्थ [वराह, १२६।४०-५०, जहां सोम (वराह १२६।४२) और चतुर्भुज विष्णु (वराह, १२६।४५) प्रसिद्ध देवता थे], करवीरक (वराह, १२६।५१-५५), पुंडरीक (वराह १२६।५७-६२) अथवा पौंडरीक (१२६।२१४ जहां विष्णु-कच्छप आराध्य देवता थे), अग्नि तीर्थ (वराह, १२६।६३-७४), वायव्य तीर्थ (वराह, १२६।७५-८०) अथवा वायु तीर्थ (वराह, १२६।७७, ७७), शक्र-तीर्थ (वराह, १२६।८१-८५ इसके दक्षिण पांच वृक्ष स्थित थे), वरुण तीर्थ (वराह, १२६।८६-९०), सप्तसामुद्रक तीर्थ (वराह, १२६।९१-९६ यह गंगा तट पर स्थित था), मानसर तीर्थ (वराह, १२६।९७-१०२) और निर्माल्यकूट (वराह, १२६।२०४, १९६, १९८-२०६) यहां के अन्य तीर्थ हैं। इन तीर्थों में मायातीर्थ की पहचान वर्तमान मायापुर (कनखल के निकट स्थित) से की जा सकती है।

रुत खंडे

१

रुरुखण्ड
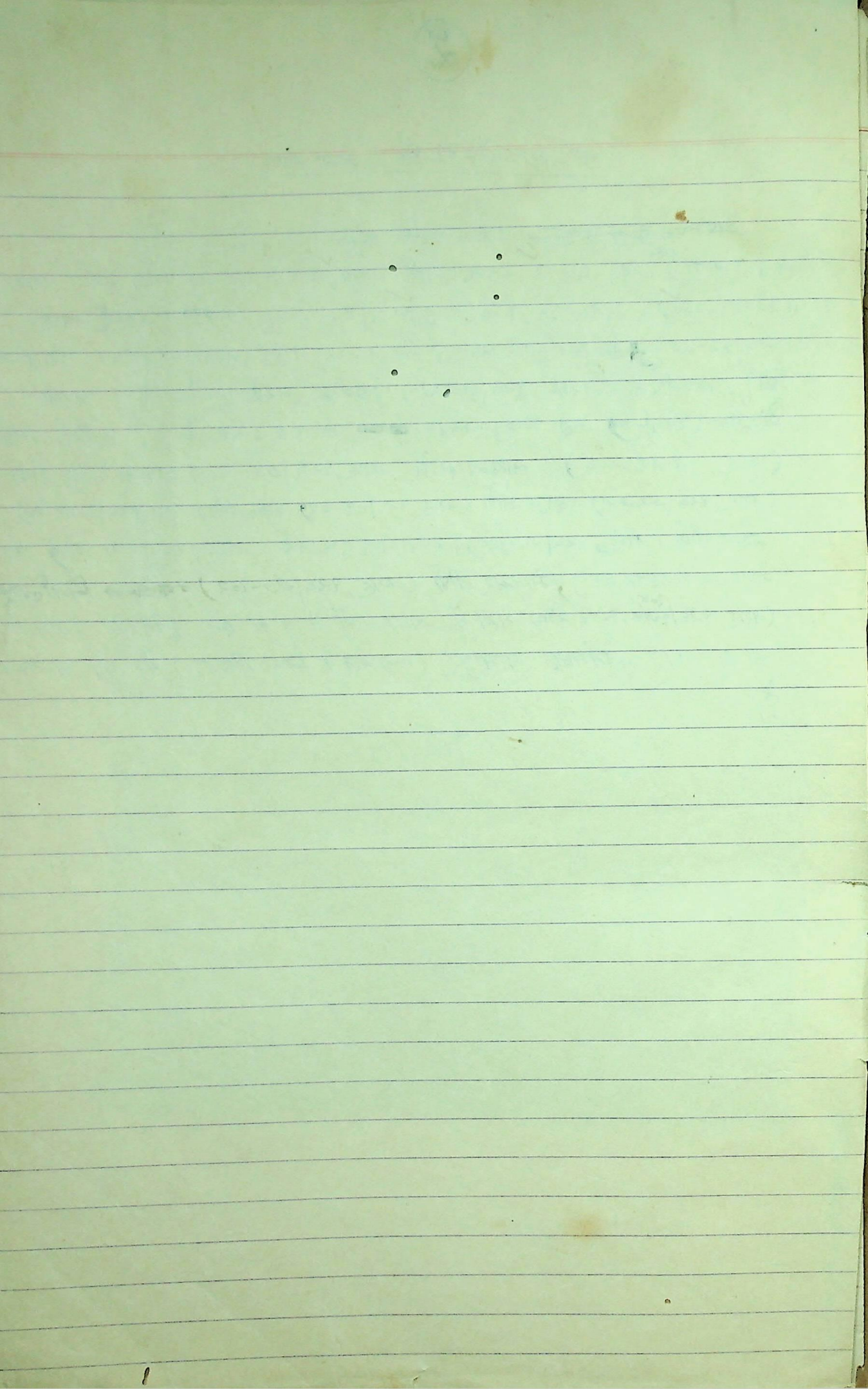
देवदत्त-आश्रम— हिमशैल पर हृषीकेशाश्रित रुरुखंड परम पवित्र क्षेत्र कहा गया है।[1][2] यहां देवदत्त मुनि का आश्रम था जहां वह तप करते हुए हृषीकेश के ध्यान में लीन रहते थे।[3] परन्तु वे तप-भ्रष्ट होगये और इन्द्र द्वारा भेजी गयी प्रम्लोचा अप्सरा से रुरु नाम की कन्या का जन्म हुआ।[4]

हृषीकेश — किन्तु कन्या-जन्म के पूर्व ही देवदत्त अपने अविवेक और तपस्या के विनाश से दुखी होकर अपने आश्रम को छोड़ कर भृग्वाश्रम पर चले गये। प्रम्लोचा भी उस प्रसूता कन्या को आश्रम के पास ही छोड़ कर चली गयी।[6] उस कन्या को रुरु नामक मृगों ने उसी आश्रम में पाल-पोष कर बड़ा किया। इसी लिये उसका नाम भी रुरु पड़ गया। वहीं पिता के आश्रम (देवदत्ताश्रम) में तप द्वारा उसने जगन्नाथ रमापति को प्रसन्न किया। उसने तप एवं संयम से अपनी इन्द्रियों को पूर्ण रूप से निरुद्ध कर लिया[7] और वह बाहरी पदार्थ का अनुभव न कर सकी। उसकी ऐसी स्थिति होने पर भगवान उसकी इन्द्रियों में प्रवेश कर प्रत्यक्ष रूप से उसके सामने उपस्थित होगये। इसी लिये भगवान का हृषीकेश नाम प्रसिद्ध हुआ।[8] जब उसने आंखे खोली सामने भगवान हृषीकेश को पाकर वह अत्यन्त प्रसन्न होगयी और भगवान से उसने वर मांगा कि, यह क्षेत्र मेरे नाम से प्रसिद्ध हो'। अतः वह क्षेत्र रुरुक्षेत्र कहलाया। वह कन्या भी पवित्र तीर्थ-रूपा होगयी।[9] हिमालय पर स्थित यह क्षेत्र आधुनिक हृषीकेश (ज़िला सहारनपुर) के आसपास का रुरुखंड था।

१- वराह, अ०१४६ वां, रुरुखण्ड का माहात्म्य वर्णन करता है।
२- वही, १४६/४
३- वही, १४६/५-१३,
४- वही, १४६/२५-३६
५- वही, १४६/३७-४२
६- वही, १४६/५४
७- वही १४६/५६-६३
८- वही, १४६/६४
९- वही, १४६/७२-७७
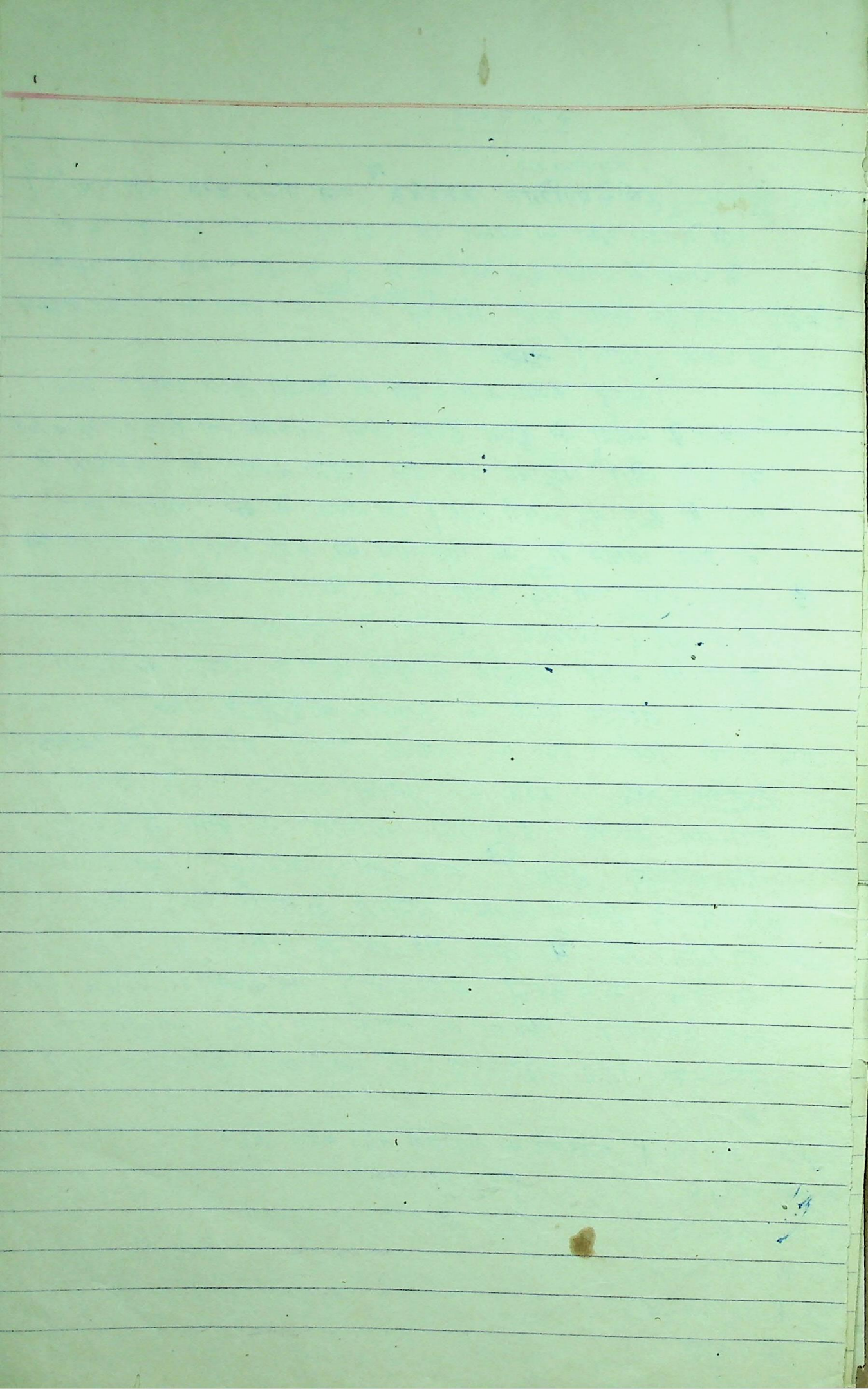
ब्रह्म पुराण में कोकामुख का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वराह देव ने पितरों का उद्धार विष्णु तीर्थ पर किया और उन्हें लोहार्गल नामक तीर्थ पर जल दिया—

उद्धृत्य च पितॄन्देवो विष्णु तीर्थे तु शूकरः।
ददौ समाहितस्तेभ्यो विष्णुर्लोहार्गले जलम्॥ [1]

इसी प्रकार उन्होंने कुश, तिल आदि लेकर पितृतर्पण किया। इस कार्य के सम्बन्ध में ~~कामिक तीर्थ~~, लोहार्गल के बाद, कामिक तीर्थ, कोटिवट और तुंगकूट का उल्लेख है।[2] ये सभी तीर्थ कोकामुख क्षेत्र के ही तीर्थ हैं।[3] कामिक वराह पुराण का सर्वकामिक तीर्थ है जो कौशिकी-कोका संगम पर स्थित था। अतः लोहार्गल भी कोकामुख क्षेत्र का ही कोई विष्णु तीर्थ था जो कोका और कौशिकी नदियों से दूर नहीं था। लोहाघाट (कमायूँ) इतना प्रसिद्ध और पवित्र भी नहीं है कि उससे लोहार्गल की पहचान की जा सके।

---

1. ब्रह्म, २१९/४०
2. वही, २१९/४२-४३
3. वराह १४०/७५

3. वराह १४०/४७ कोटिवट, और १४०/२७ में तुंगकूट का उल्लेख है।

लोहार्गल ~~(लोहार्गल)~~ क्षेत्र मा० (वराह पृ०१५२)

यह पुण्य क्षेत्र सिद्धवट से ३०योजन दूर हिमालय पर स्थित था। वहां भगवान् विष्णु की हिरण्य-प्रतिमा थी। यहां म्लेच्छ अथवा दानव भी थे। भगवान ने अपने चक्र से इनका संहार कर दिया था। इस नाम की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि देवताओं की अर्गला देकर चक्र से विष्णु ने हजारों दानवों को गिरा दिया था। इसीलिये यह लोहार्गल कहलाया। यहां कुंड में स्नान करना, व्रत करना एवं प्राणत्याग करना पुण्य कर्म था।[१] इसकी पहचान कमायूं के अल्मोड़ा जिले में स्थित लोहाघार से की गयी है।[२] परन्तु

~~यहीं एक श्वेत अश्व की कल्पना करते हुए उत्तर कुरु की विजय भी कल्पित किया गया था। यह अश्व~~

१- वराह, १५२।७-१८
यहीं अश्व-कल्पना एवं उत्तर-कुरु की विजय का उल्लेख किया गया है (वराह, १५२।१५-२८)

२- जी० डि० पृ० ११५, ध० शा० इ०, भाग ३, पृ०१४७८

इसी क्षेत्र में पंचसर कुंड[१], नारदकुंड[२], वसिष्ठ कुंड[३], पंचकुंड[४], सप्तर्षि कुंड[५], शरभंग कुंड[६] (जो शरभंगा नदी = संभवत: शरभू या सरयू के पास स्थित था)[७], अग्निसर कुंड[८], बृहस्पति कुंड, वैश्वानर कुंड कार्तिकेय कुंड (यहां षन्मुख -षण्मुख- कुमार की मूर्ति तथा मंदिर भी था)[१०], उमाकुंड (जहां महादेव की शक्ति गौरी का जन्म हुआ था। यहीं गौरी का मन्दिर भी था)[११], महेश्वर कुंड (जहां उमा-महेश्वर का विवाह हुआ था)[१२], और ब्रह्म कुंड (जहां चार वेदों की धाराएं प्रवाहित हुईं)[१३] पवित्र और प्रसिद्ध तीर्थ थे। ये सभी तीर्थ हिमवत्पर्वताश्रित थे। लोहार्गल भी मंगल्य और पवित्र धर्माख्यान कहा गया है।[१४]

१. वराह, १५१।३४-३६
२. वही, १५१।३७-३८
३. वही, १५१।४०-४२
४. वही, १५१।४३-४५
५. वही, १५१।४६-
६. वही, १५१।४८-५१
७. वही, १५१।५२-५४
८. वही, १५१।५५-५७
९. वही, १५१।५८-६०
१०. वही, १५१।६१-६३
११. वही, १५१।६४-६६
१२. वही, १५१।६७-७०
१३. वही, १५१।७१-७७
१४. वही, १५१।७८-८३
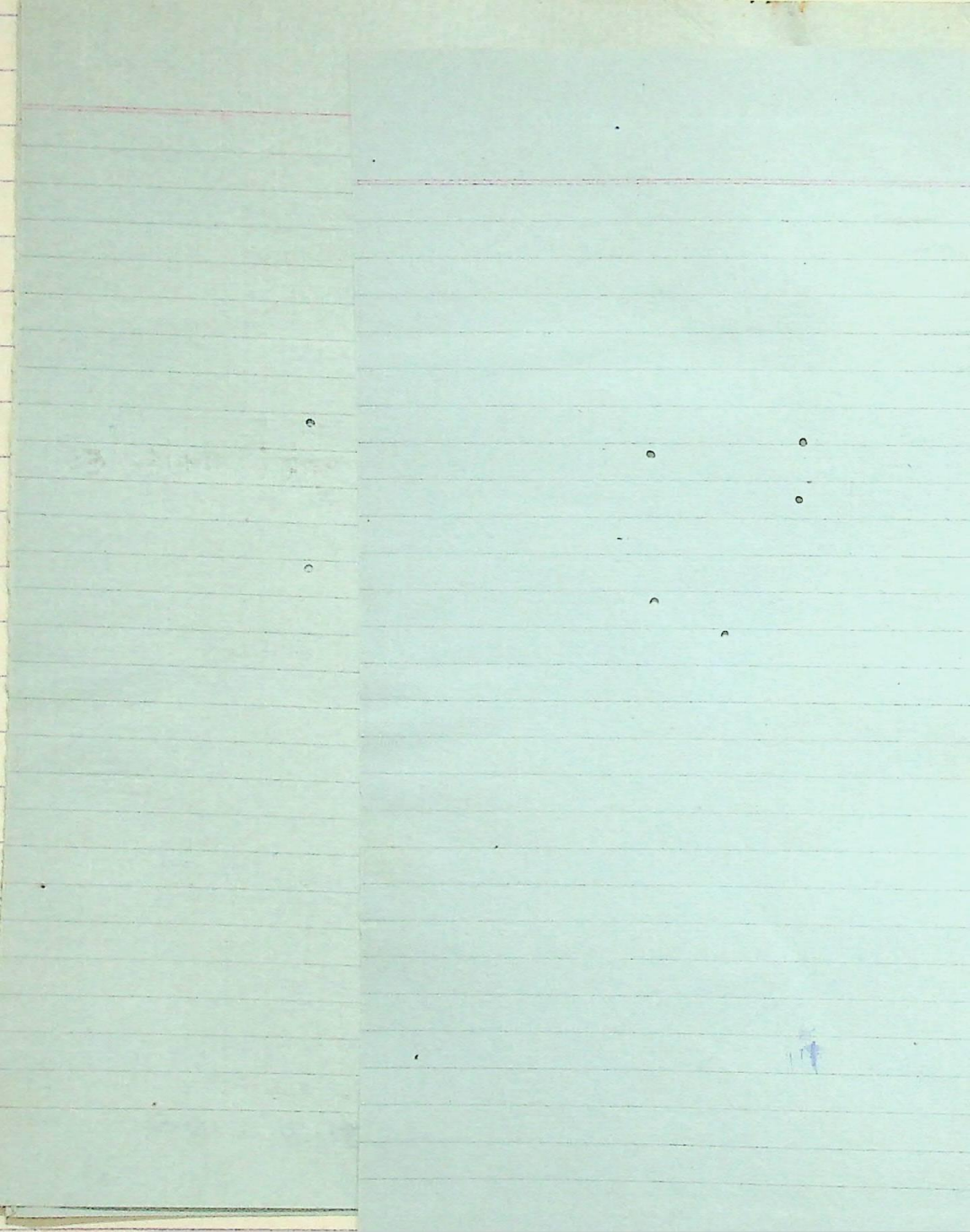
कोकामुख-माहात्म्य (कोकाख्यानं)

वराह पुराण में कोकामुख मा० (अ०१२२) और इस वैष्णव क्षेत्र (कोकाभागवतस्य)[१], कोकामंडल[२], में स्थित तीर्थों का वर्णन (अ०१४०) किया गया है। इसे विष्णु-पद (विष्णोस्तत् परमं पदं)[३] कहा गया है जिससे इसकी प्रसिद्धि एवं इसका महत्व सिद्ध होता है[३क]। यहां विष्णु मंदिर भी था[४], जहां भगवान (विष्णु) की परमा मूर्त्ति[५] प्रतिष्ठापित की हुई थी। यह ~~[illegible]~~ वराहदेव की पुरुषाकृति-मूर्ति ही थी (वराहरूपमादाय तिष्ठामि पुरुषाकृतिः) जिसका मुख दक्षिण दिशा (दक्षिणामुखः) की ओर था। इस प्रकार हिमवच्छिखर पर स्थित देवता भारतभूमि की ओर देखते हुए (रक्षा कर रहे) थे।[६]

इस क्षेत्र में अस्थि-प्रक्षेप का विशेष महत्व था।[७] कोकामुख की यात्रा, एवं कोकामुख-माहात्म्य का पाठ करना अथवा श्रवण करना भी पुण्य-प्रद कर्म कहा गया है।[८] इस क्षेत्र की स्थिति कौशिकी (आधुनिक कोसी, बिहार एवं नेपाल) तट पर उत्तरी बिहार एवं नेपाल की तराई में थी। कोकामुख क्षेत्र की पहचान आधुनिक वराहक्षेत्र (ज़िला पुर्णिया, बिहार) से की गई है। कोकामुख या वराहक्षेत्र पुर्णिया ज़िले में नाथपुर के ऊपर त्रिवेणी में स्थित है जहां अरुण, तांबर और सन कोसी का संगम है।[१०] अभिलेखों

१- वराह, १२२।१८(२)

२- वही, १२२।२०(१)

३ वही, १२२।५४-५५(१) यहां विष्णुपद नाम का तीर्थ भी था।

३क वही, १४०।१०-१२

४ वही, १२२।६८ ४

५ वही, १४०।१३,२०

६- वही, १४०।८५-८८

७- वही, १२२।२०-२७, ७०-८८

८- वही, १४०।७०-७६, १२२।१०५

९ आ०रे०मे० इ०, पृ० २२१, २२२.

ध०शा० इ०, तृतीय भाग, पृ० १४२४

१० ओ० डि०, पृ० १०१

पुर्णिया जिला (बिहार) में नाथपुर के ऊपर त्रिवेणी पर स्थित है। यहां कोसी नदी की मिश्रित धारा में तांबर, अरुन और सन कोसी नदियों का संगम है। (२२)

(११)

के आधार पर तथा वराह पु० डॉ० डी० सी० सरकार ने कोकामुख के माहात्म्य, ~~और स्थित तीर्थों~~ और इसकी स्थिति का विवेचन किया है।[2]

कोका हिमालय से निकलनेवाली नदी है, जिसके तट पर सैकड़ों तीर्थ स्थित थे।[3] इसके तट पर वराहदर्शन और पूजन पुण्य कर्म था।[4] अतः स्पष्ट है कि कोकामुख के पूज्य देवता वराह थे (कोकामुखे दिव्यवराहरूपम्)।[5]

वराह पुराण के अनुसार शकाधिपति के राजपुत्र ने अपनी राजधानी आनन्दपुर (आनर्तपुर, आनर्त्त अथवा उत्तरी गुजरात) से कोकामुख की तीर्थयात्रा की थी।[6] कोकामुख क्षेत्र का ५ योजन विस्तार था।[7]

इस क्षेत्र में निम्नलिखित तीर्थ स्थित थे (१४०।२६)

जलबिन्दु (वराह, यह भी प्रसिद्ध तीर्थ था

विष्णुधारा (वराह, १४०।१७-२०) - इस वैष्णव क्षेत्र में यह प्रसिद्ध तीर्थ था जहां पर्वत से एक धारा मुसल की भांति गिरती थी। इसके पास ही विष्णु की प्रसिद्ध मूर्ति थी, जहां प्राण-त्याग किया जाता था।

विष्णुपद (वराह, १४०।२१-२२) - यह कोकामुख पर स्थित (कोकामुखाश्रितम्) वराह की मूर्ति के पास ही (वाराहसंश्रितम्) तीर्थ था। यहां तपस्या भी किया जाता था।

१. ज० ए० सो० बं०, अ० १७, पृ० २१७ — २२३

३. ब्रह्म, २१७।१७-२०, २८, १०६

४. वही, २१७।१०७

५. वही, २१७।११६

६. वही, १४०।१४

७. वही, १४०।८४

विष्णुसर (वराह, १४०/२४-२५) - इस तीर्थ को वराह-लीला-क्षेत्र (जहां वराह ने पृथ्वी का उद्धार किया था) कहा गया है।

सोमतीर्थ (वराह, १४०/२६-२८) - यहां विष्णु नामकी पंचशिलाभूमि प्रसिद्ध थी।

तुंगकूट (वराह, १४०/२९-३०) - यहां पर्वत से चार धारायें गिरती थीं।

अनित्याश्रम (वराह, १४०/३१-३३) भी पुण्य क्षेत्र था।

अग्निसर (वराह १४०/३४-३६) - यहां पर्वत से पांचधारायें गिरती थीं।

ब्रह्मसर (वराह, १४०/३७-३९) - यहां एक धारा गिरती थी।

धेनुवट (वराह, १४०/४०-४३) - यहां भी एक धारा गिरती थी।

धर्मोद्भव तीर्थ (वराह, १४०/४४-४६) - यहां भी एक धारा गिरती थी।

कोटिवट (वराह, १४०/४७-५०) ~~और पापप्रमोचन~~ यहां भी एक धारा गिरती थी।

पापप्रमोचन तीर्थ (वराह, १४०/५१-५४), यम व्यसनक तीर्थ (वराह, १४०/५५-५७), मातंग तीर्थ (वराह, १४०/५८-६०), और वज्रभव (वराह, १४०/६१-६५, वज्रहस्त इन्द्र का तीर्थ) कौशिकी नदी के तट पर स्थित थे।

शक्ररुद्र (वराह, १४०/६५-६७) कोकाशिलातल पर स्थित था।

दंष्ट्रांकुर (वराह, १४०/६८-७०) -यह तीर्थस्थान कोका नदी का उद्गमस्थान है।

✓ विष्णुतीर्थ (वराह, १४०/७१) प्रसिद्ध तीर्थ था।

त्रिस्रोतस तीर्थ (वराह, १४०/७२-७४)-यहां पर्वत से जलधारा निकलकर कोका नदी में गिरती है।

सर्वकामिका-शिला (वराह, १४०/७५-७८) - यह पुण्य-शिला कौशिकी और कोका नदियों के संगम पर स्थित थी।

मत्स्यशिला (वराह, १४०/७९-८३) - यहां तीन धारायें कौशिकी नदी में गिरती हैं। इस तीर्थ पर नारायण (विष्णु) की मत्स्यावतार-मूर्ति थी।

कोकामुख क्षेत्र और इसके सभी उप-तीर्थों में स्नान, पूजन तथा प्राणत्याग नामक धार्मिक क्रियायें की जाती थीं। इससे सिद्ध होता है कि यह क्षेत्र कितना पवित्र भूखंड था जो कौशिकी (आधुनिक कोसी) नदी की घाटी में स्थित था/ गुप्तकालीन अभिलेखों में भी

कोकामुख क्षेत्र और वहां के तीर्थ-देवता - वराह देव - का उल्लेख मिलता है। बुधगुप्त के दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेख में भी हिमवच्छिखर पर स्थित कोकामुखस्वामी - श्वेतवराह का उल्लेख है। (१)

संभवतः भागवत पु० (५।२०।१६) में उल्लिखित गोकामुख पर्वत और कोकामुख एक ही हैं।

१. ए० इ०, सं० ३६, पं० ५-७, १०
जा० [illegible] ए० सो० इ०, पृ० २१७-२१८

ुरव क्षेत्र और वहां के तीर्थ देवता - वराहदेव - का
मिलता है। बुधगुप्त के दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेख
हिमवच्छिखर पर स्थित कोकामुख स्वामी - [illegible] ·
राह का उल्लेख है। (1)
संभवत: भागवत पु० (5।19।16) में
ृत गोकामुख पर्वत और कोकामुख

ं० 36, पं० 5-7, 10
मे० इं०, पृ० 217-218

स्तौमि मथुरां पापहारिणीं (वराह पु० १५२।१२(i))

सुबाहु

शत्रुघ्न ने अपने पुत्र को मथुरा (मधुरा) के राज्य पर अभिषिक्त किया था। अतः इसकी स्थापना राम-युग में हुई थी। राम राज्य के समय रमानुज शत्रुघ्न ने मधु नामक दैत्य के पुत्र लवण को मारकर मधुवन में मथुरा पुरी बसायी थी। मधुवन पुण्यवन था जहां शत्रुघ्न ने मथुरा पुरी को बसाया था। इस प्रकार मथुरा प्राचीन, और प्रसिद्ध व्यापारिक नगर तथा पवित्र था। इसकी गणना सप्त [illegible] पुरियों में की जाती है। पुराणों में मथुरा की श्री कृष्ण की जन्मभूमि और उनकी लीला-क्षेत्र होने के कारण यह एक पवित्र स्थान बन गया। यहां आज भी हज़ारों यात्री भारत के विभिन्न-भागों से कृष्ण की जन्मस्थली और उनकी लीला-भूमि को देखने आते हैं। विष्णु पुराण में यहां हरि-दर्शन, यमुना-स्नान, गोविन्द-पूजा तथा पितृ-पिण्डदान का महत्व बताया गया है। ~~इस क्षेत्र को व्रज-स्थान या व्रज भी कहते हैं।~~ अन्य पुराणों में भी मथुरा-माहात्म्य प्राप्त होता है। सबसे अधिक विशद रूप से वर्णित मथुरा-माहात्म्य वाराह पुराण में मिलता है। पद्म पुराण में मथुरा और वृन्दावन, तथा यहां स्थित तीर्थों का महात्म्य बताया गया है। नारदीय पुराण में भी मथुरा के द्वादश वन (उत्तरखंड, अ० ७९) और वृन्दावन के तीर्थों (उत्तरार्ध अ० ८०) का वर्णन किया गया है।

वराह पुराण १५२।२०; १६३।४० एषा पुरी महापुण्या

१ रामायण, उत्तरकांड १०८।१०, ११

२ विष्णु पु० ४।४।१०१; भागवत ९।११।१४

३ विष्णु पु० १।१२।२–४

४ विष्णु पु० ५।३।१६; वराह पु० १५२।१; नारदीय पु० २।७९।१

देवीभागवत ४।१।२७; ४।२७।२७

८ विष्णु पु० ६।८।३१–४०

९ विष्णु पु० ५।६।२७, ३०

१० नारदीय पु० , स्कन्द पु०

पद्म पु०

वराह पु०

११ पद्म पु० ४।७३।४३–४५; ४।७२।१३५–१२०; १२७–२२

१२ वही, ४।८

वराह पुराण में (अ० १५२ – अ० १७८) इसके तीर्थों, वनों, देवी-देवताओं के प्रिय स्थानों, कुंडों, कूपों और वहां करणीय धर्मों – स्नान, पूजन, जप-तप, प्राणत्याग, पितृ-तर्पण आदि का भी उल्लेख मिलता है। इससे न केवल तत्कालीन धार्मिक जीवन का ही चित्र प्रस्तुत होता है, प्रत्युत बहुत से ऐसे देवालयों का भी अस्तित्व ज्ञात होता है जो क्रूर-काल की थपेड़ों और विदेशी आक्रान्ता के आघातों से गिर गये / कर नष्ट हो। इन देवी-देवताओं की मूर्तियाँ तो उपलब्ध हो हैं किन्तु उनका सम्बन्ध मूर्तियाँ नहीं अपना इतिहास बता सकीं और न मूर्तियों का इतिहास लेखक बिना ही कुछ बता सकता है। डा० अग्रवाल द्वारा मथुरा की देव-मूर्तियों का विवरण इन तीर्थों के विवरणों के साथ ही मिल कर अपने अतीत की करुण कथा कह सकता है। पुराण कार ने मथुरा माहात्म्य में, तीर्थों के साथ देव-प्रतिमाओं और देवालयों का वर्णन देकर मथुरा कला जीर्णोद्धार किया है। अस्तु नष्ट-भ्रष्ट पवित्र स्थानों की लुप्त महिमा को अक्षुण्ण बनाये रखने वाले वराह पुराण के विशद मथुरा-माहात्म्य में मथुरा का अतीत गौरव का सचित्र और सजीव हो गया है। यदि इन के आधार पर ही पुरातत्व परक खुदाई भी की गयी होती या की जाय तो मथुरा के इतिहास का भी पुनरुद्धार हो सकता है।

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, मथुरा की विविध मूर्तियों का विवरण, जे० यू० पी० हि० सो०, वाल्यूम २० – २२

(१) → मथुरा ~~भगवान हरि-कृष्ण का निवास-स्थान~~

है (मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितो हरिः)[१] ।

पावनपुरी मथुरा न केवल एक वाणिज्य-स्थली ही थी, प्रत्युत एक प्रख्यात तीर्थ और विस्तृत क्षेत्र भी था।[२] व्यापार मात्र के लिये गया हुआ व्यक्ति मथुरा-स्नान से ही पवित्र होजाता है[३] यह तथ्य पांचाल्य ~~ब्राह्मण~~ ब्राह्मण पुत्र की कथा[४] से स्पष्ट हो जाता है।[४] एक (धनवान् की सन्तान) पंचाल-ब्राह्मणात्मज वाणिज्य-भाण्ड लेकर मथुरा-पुरी में आकर रहने लगा। तीर्थस्नान करता हुआ तिलोत्तमा (वैश्या) के संसर्ग में आ पड़ा। वह उसकी बहन ही थी। इस पाप से विह्वल एवं व्याकुल उस ब्राह्मण पुत्र की भी सुगति प्रायश्चित्त तथा यहीं स्नान, दान, जप आदि से हो गयी थी।[५]

मथुरापुरी-रम्या. कृष्णप्रिया मथुरापुरी[६] अत्यन्त रमणीक नगरी थी।[६] यह जम्बूद्वीप में भी उत्कृष्ट समझी जाती थी।[६] यह कुषाण-युग की माथुर-महिमा है जब यहां ~~की त्रिवेणी संस्कृति~~ धर्म, साहित्य एवं कला, तथा ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मों और भारतीय, ईरानी एवं यूनानी संस्कृतियों की त्रिवेणी मध्यदेश से मध्य एशिया एवं चीन (भद्राश्व वर्ष) तक प्रवाहित ~~होकर पावन~~ हो ~~रहा~~ रही थी। कलाकृतियों, अभिलेखों और विदेशी विवरणों से भी मथुरा की भव्यता, प्राचीनता और इसके गौरव की पुष्टि होती है।

१- भागवत, १०।१।२८(२)

२- स्कन्द, २।५।अ० १७ इत्यादि

भागवत, १०।१।२७-२८

३- स्कन्द, २।५।१७।१० : अनुषंगेण ~~[illegible]~~ गच्छन्ति वाणिज्येनापि सेवया। मथुरास्नानमात्रेण दिवं यान्ति गतांहसः॥

४- वराह, अ०१७५- अ०१७६

५- वही, १७६। ७८-८०

६ वही, १६८।८

७ ~~वही~~, पोद्दार अ० ग्र०, डा० छाबरा, मथुरा-महिमा (संस्कृत कविता में) पृ० ७४४

डा० अग्रवाल, इ० प्रा०, पृ० २१६, २३०-

डा० ला, जा० र० भाग १, पृ० २१४— २१७

~~इस तथ्य~~ मथुरा मंडल में सोंख के निकट डा० हर्टेल की खुदाइयों से भी यही सिद्ध होता है
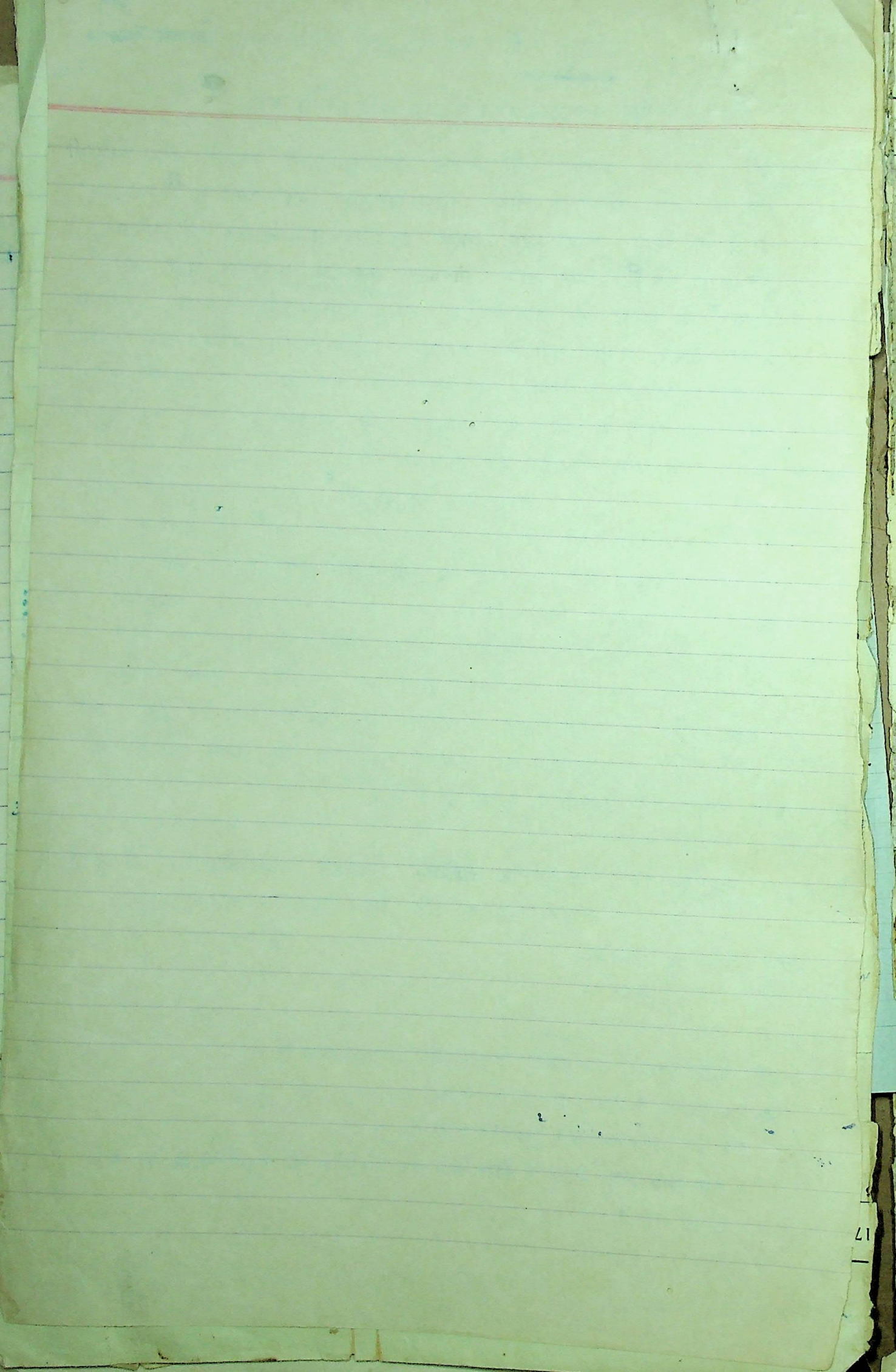
मथुरा की प्राचीनता

रामानुज शत्रुघ्न ने मधुवन में मथुरापुरी बसायी थी।[1] इसी अवसर पर अयोध्या से यहां आकर राम ने भी विश्रान्ति तीर्थ पर धार्मिक क्रियायों — स्नान, उपवास एवं तर्पण — को करने के बाद महोत्सव किया था।[2]

यह वासुदेव-कृष्ण की जन्म भूमि है।[3] कालिन्दी-यमुना के दोनों तट कृष्ण-लीला-स्थलों से अभिमंडित आज भी भक्तों एवं संत-महात्माओं की साधनाभूमि बनी है। अस्तु, भारत के जनप्रिय देवताओं — राम-कृष्ण — से सम्बद्ध मथुरा प्राचीन एवं पवित्र पुरी है।

मथुरा-महिमा - पुराणों,[4] और अन्य ग्रन्थों में भी मथुरा का गुण-गान मिलता है।

---

(१) विष्णु पु०, ४|४|१०१, भागवत ९|११|१४
वराह, १६३|४७-५१

२. वही, अ० १७८

३ - वही, १५२|११, २३-२४

(४) पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ, पृ० ८०३-८१७
श्री भास्करनाथ मिश्र, "अष्टादश पुराणों में मथुरा".
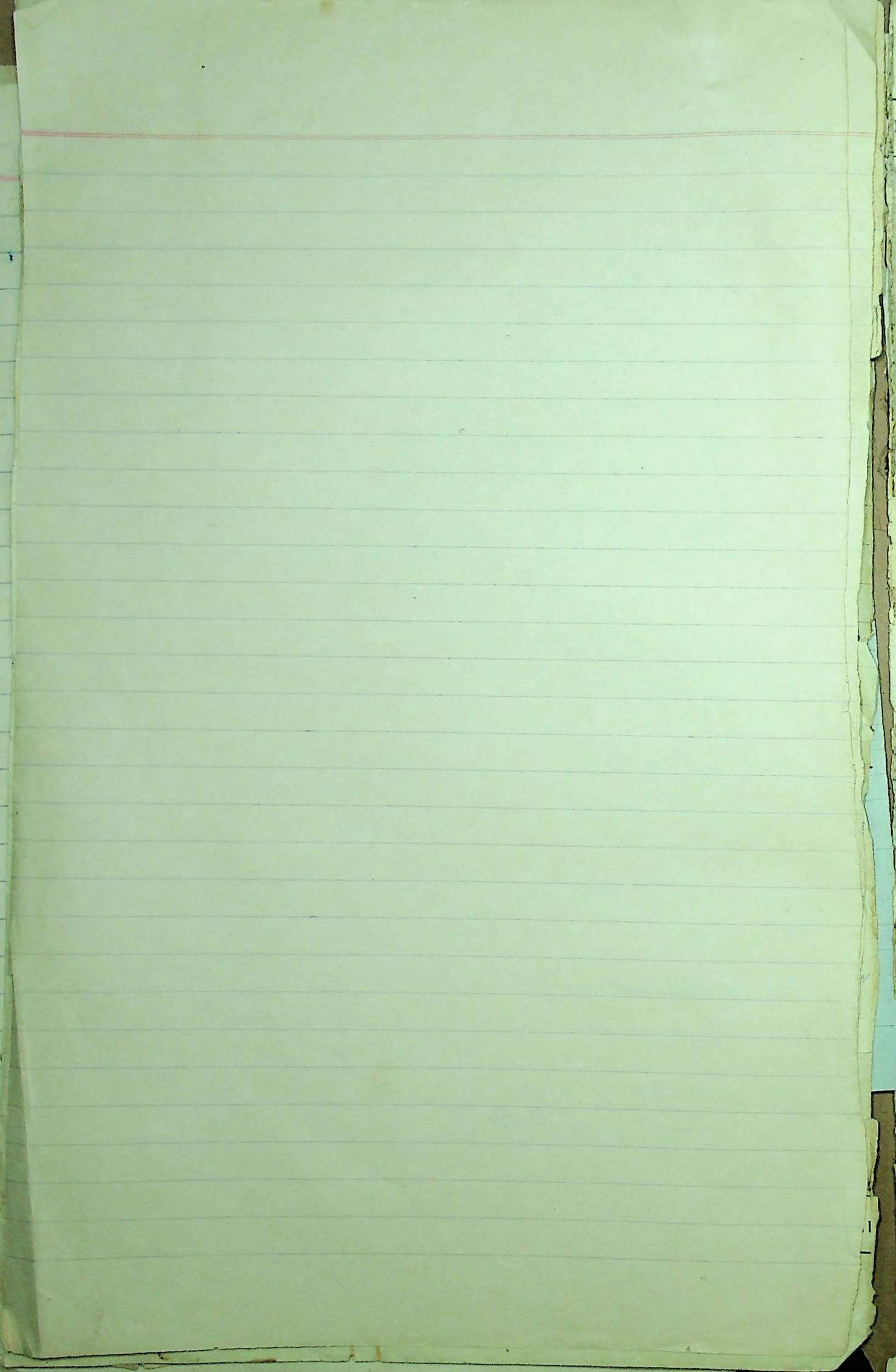
मथुरा-मण्डल के तीर्थ

स्तौमि मथुरां पापहारिणीं।[1]

प्राचीन भारत के धार्मिक जीवन में मथुरा का विशेष महत्व रहा है। इसीलिये इस की महिमा शास्त्रों में वर्णित है। आज भी हज़ारों यात्री यहां तीर्थयात्रा के लिये देश के भिन्न भिन्न भागों से आते हैं। मथुरा में ही वासुदेव का प्रादुर्भाव हुआ था।(*) यह कृष्ण की जन्म-भूमि है।(+) मथुरा की स्थापना का सम्बन्ध शत्रुघ्नचरित से है।[2] शत्रुघ्न ने मधु नामक दैत्य के पुत्र लवण को मारकर मधुवन में मथुरा पुरी बसायी थी।[3] इस कार्य से प्रसन्न होकर रामचन्द्र जी अयोध्या से मथुरा आये। यहीं, विश्रान्ति तीर्थ, पर उन्होंने स्नान, और उपवास के बाद ब्राह्मणों का तर्पण किया।[4] इस से भी सिद्ध होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में ही मथुरा का धार्मिक महत्व स्थापित हो चुका था।

मथुरा महिमा

विष्णु पुराण में यहां हरि-दर्शन, यमुना-स्नान, गोविन्द-पूजा तथा पितृ-पिण्ड दान का महत्व बताया गया है।[5] यह पाप हरने वाला तीर्थ था, जहां ध्रुव ने तपस्या की थी, क्योंकि यहां सदैव हरि का सान्निध्य रहता है।[6] पद्म पुराण भी इस भगवान की सनातनी पुरी का माहात्म्य बताता है। यह मुक्ति-दायिनी पुरी कही गयी है।[7] पद्म पुराण में भी मथुरा-माहात्म्य और वृन्दावन-रहस्य तथा यहां स्थित तीर्थों का वर्णन किया गया है।[8] बृहन्नारदीय पुराण (उत्तरार्ध, अ० ७९) में मथुरा के द्वादश वनों और (उत्तरार्ध, अ० ८०) में वृन्दावन के तीर्थों का वर्णन किया गया है।

(*) वराह पु० १५२/२३-२४ (+) वही १५२/११

१- वराह पु० १५२/१२ (?)

२- वही अ० १७८ ② विष्णु पु० ४/४/१०१; भागवत ७/११/३४

③ विष्णु पु० १/१२/२-४; वराह पु० १६३/५१-५२

④ वराह पु० अ० १७८

५- विष्णु पु० ६/८/३१-४०

६- वही, १/१२/५; भागवत ४/८/४२-४३

७- पद्म पु० ४/७३/४३-४५

८- वही, पातालखंड अ० ७२-७५

साथ साथ यमुना तथा हरि (कृष्ण) का माहात्म्य सिद्ध होता है। वराह पुराण मथुरा तीर्थ तथा केशव को सभी प्रकार से श्रेष्ठ बताता है।[1]

~~प्रायः सभी पुराणों में विष्णु पुराण ... और प्रथम माना गया है ... इस पुराण से भी यही स्पष्ट होता है कि मथुरा में हरि, गोविन्द और यमुना की पवित्रता स्थापित हो चुकी थी।~~ वराह पुराण में हमें मथुरा मा० विष्णु, पद्म और बृहन्नारदीय पुराणों की अपेक्षा अधिक विकसित रूप में मिलता है। ~~पद्म पुराण में मथुरा को भगवान की सनातनी ... और मुक्तिदायिनी पुरी कहा गया है।[2] यही पुराण मथुरा-वृन्दावन के माहात्म्य का वर्णन करते हुए यहां के तीर्थों का भी उल्लेख करता है। बृहन्नारदीय पुराण (उत्तरार्ध अ० ७९ और ८०) में भी मथुरा के बारह वनों और वृन्दावन के तीर्थों का वर्णन मिलता है।~~ वराह पुराण के (अ० १५२ से अ० १८० तक) २९ अध्यायों में मथुरा-माहात्म्य का वर्णन किया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वराह पुराण का मथुरा-माहात्म्य एक विशेष संहिता या शास्त्र है, जिसमें कृष्ण की जन्म-भूमि,[3] मथुरा में स्थित उनकी लीलाओं से सम्बन्धित स्थलों के महत्व का वर्णन किया गया है। इस तीर्थ-संहिता में ही कृष्ण-भक्ति और उनकी पूजा तथा अन्य धार्मिक कृत्यों (स्नान, पूजा, जप, तप, तर्पण, श्राद्ध और प्राणायाम) का वर्णन किया गया है। साथ ही साथ तीर्थ-प्रभाव को दिखाने के लिये बहुत सी कथाएं भी मिलती हैं जिनसे प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के विविध पक्षों पर भी प्रकाश पड़ता है। ~~इस माहात्म्य ... के बहुत से अंशों को लक्ष्मीधर ने अपने कृत्यकल्पतरु के तीर्थकाण्ड के मथुरा माहात्म्य में लिया है, जैसा कि निम्नलिखित उद्धरणों से सिद्ध होता है :—~~

युगों से विश्वास बना हुआ है कि

~~1. हजरा, पुराणिक रिकॉर्ड्स, पृ०~~

2. पद्म पु० ४।७३।४३-४५

1. वराह, १७७।३३(?) : न तीर्थं मथुरायां हि न देवः केशवात्परः ॥

(६)

17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	Total

(8)
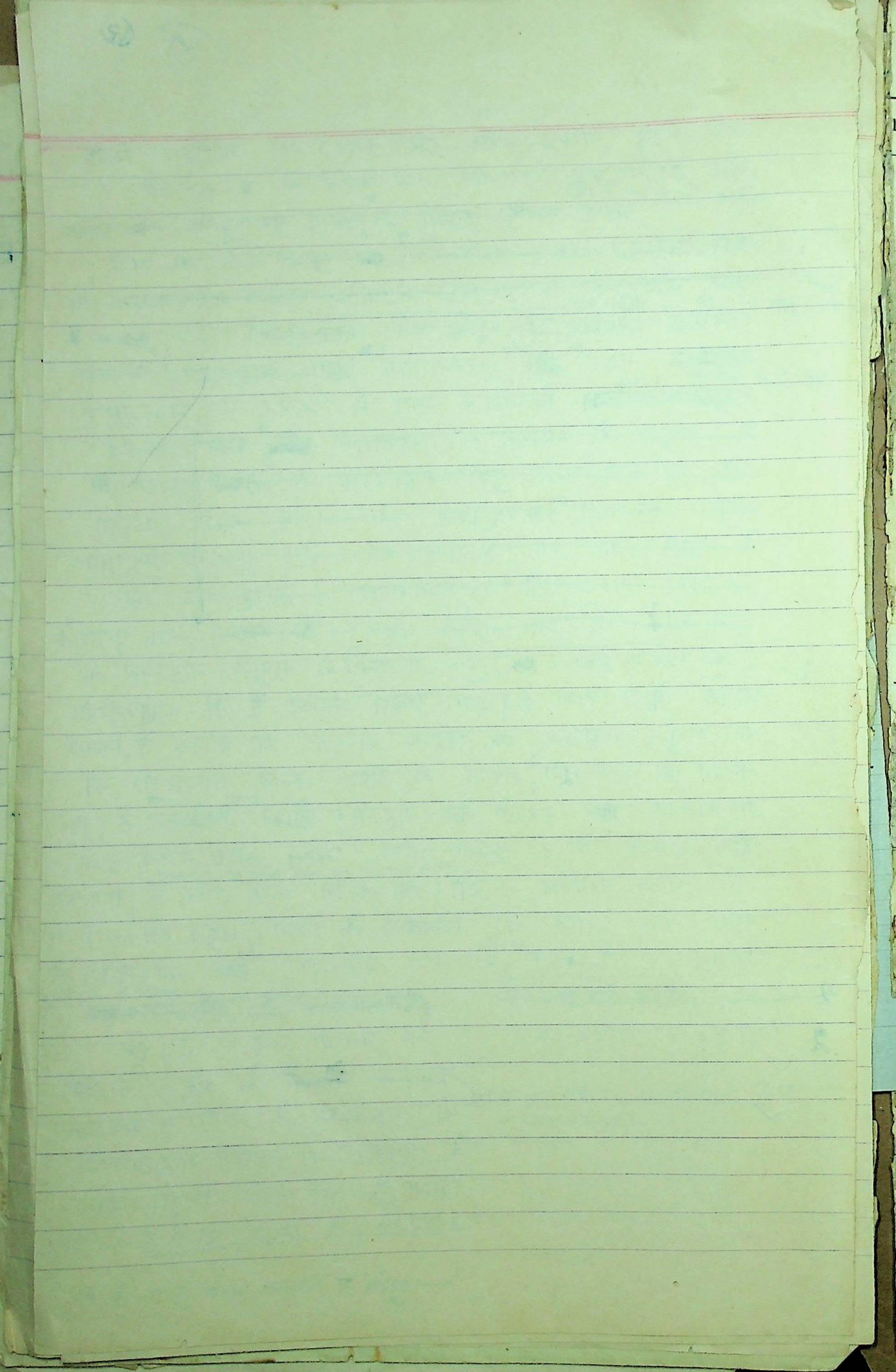
वराह पु० के अ० १५६ में आठ तीर्थों का वर्णन है। यहां भाण्डीरक और वृन्दावन का भी उल्लेख है जिनका वर्णन यहां के बारह वनों में भी किया गया है। वराह पु० के अ० १५७ में यमुना पार स्थित १५ तीर्थों का वर्णन है। यहीं वर्णित तालवन भी मथुरा के बारह वनों में से एक वन था। अ० १५८ में केशव-तीर्थ और मन्दिर, उस के चारों ओर ४ दिक्पालों तथा कुछ अन्य तीर्थों के उल्लेख के बाद ही मथुरा-परिक्रमा का महत्व बताया गया है। अ० १५९ में तीर्थ-सेवा का गुण वर्णन करते हुए पृथिवी-परिक्रमा का उल्लेख है जिसका प्रचलन प्राचीन काल में था। इस के साथ ही मथुरा-प्रक्रमरा का महत्व बताया गया है। अ० १६० में मथुरा-परिक्रमा का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। मथुरा-परिक्रमा कार्तिक, कृष्ण पक्ष अष्टमी को दक्षिरा कोटि नामक तीर्थ से प्रारम्भ होकर कार्तिक, शुक्ल-पक्ष की नवमी को सूर्य-तीर्थ पर पहुँच कर समाप्त होती है। अध्याय में मथुरा के तीर्थ-संग्रह से हमें मथुरा की कला-विभूति का परिचय मिलता है। अ० १६१ में मथुरा-देवी, माथुरों, मथुरा के तीर्थ-यात्रियों और मथुरा-क्रमकों की प्रशंसा के बाद ही मथुरा के वनों की पवित्रता बताकर यहां भी बारह वनों का वर्णन किया गया है। अ० १६२ में मथुरा के चक्रतीर्थ, और का माहात्म्य किया गया है। अ० १६३ में वैकुण्ठ तीर्थ, असिकुंड, माथुर-पद्मस्वरूप, कपिलवाराह। अ० १६४ में

(५)

(३)

No. | Tutorial Fixed Day | Period

~~मथुरा मंडल बीस योजन~~

मथुरा के साथ साथ, यमुना-कालिन्दी की ~~पवित्र नदी~~ में स्नान करने तथा वहां धार्मिक कृत्य करने का महत्व बताया गया है।

इसके तट पर स्थित पुण्य स्थान, मुख्यत: ने स्थान हैं, जो श्री कृष्ण की उपलब्धियों से सम्बन्धित थे। उन्होंने यहां[1] धर्म-घातक बत्तिस दानवों का संहार किया था।

(२४) नारदीय पुराण मथुरा के चौबिस तीर्थों (चतुर्विंशति तीर्थानां माथुराणां)[2] का उल्लेख करता है। परन्तु वराह पु० में अ०१५२ में मथुरा के (१२) द्वादश तीर्थों का वर्णन है जिनमें कई तीर्थों का उल्लेख नारदीय पुराण में भी हुआ है। वराह पु० के अ०१५३ में यहां (१२F) के बारह पवित्र बनों का वर्णन है, जिनका वर्णन नारदीय पु०(उत्तरार्ध, अ०७९) और पद्म पु० (उत्तर खंड २०४।४३) में भी मिलता है। वराह पु० के अ०१५३ में पाठ भ्रष्ट है और यहां द्वितीय वन का नाम छोड़ दिया गया है। इसे हम इसी पुराण के अध्याय १६१ से प्राप्त करते हैं। (१४) वराह पु० के अ०१५४ में १४ तीर्थों का वर्णन है और यहां उल्लिखित तीर्थों का वर्णन नारदीय पुराण में भी मिलता है। वराह पुराण के अ० १५५ में अनन्त तीर्थ के अतिरिक्त केवल अक्रूर तीर्थ (तीर्थराज) का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। पद्म (उत्तर, २०४।४२) और नारदीय (२।८०।७७) में भी अक्रूर तीर्थ का उल्लेख है। यह वृन्दावन क्षेत्र में स्थित था।

[1] वराह पुराण १५२।२६.
[2] नारदीय पु० २।७९।४(iii)

No. | | Tutorial Fixed Day | Period

गोवर्धन क्षेत्र और इसमें स्थित तीर्थों तथा गोवर्धन की परिक्रमा का वर्णन करते हुए गोवर्धन-माहात्म्य तथा अ० १६५ में चातुःसमुद्रिक कूप [illegible] का माहात्म्य दिया गया है। अ० १६६ में असिकुण्ड, अ० १६७ में विश्रान्ति तीर्थ तथा अ० १६८ में मथुरा के क्षेत्रपाल (भूतेश्वर) का माहात्म्य कहते हुए, पुनः, मथुरा के तीर्थों का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। अ० १६९ में भी पीछे वर्णित तीर्थों का उल्लेख करते हुए शिवकेशव के अभेद-रूप का माहात्म्य बताया गया है। अ० १७० में गोकर्ण का माहात्म्य बताते हुए बताया गया है कि मथुरा के वैश्य लोग दूर दूर तक व्यापार करने जाते थे और वाणिज्य-लाभ से ही मथुरा में दान और मन्दिर-निर्माण भी कराते थे। मथुरा में मन्दिर-निर्माण कराना पुण्य-कर्म माना जाता था। गोकर्ण ने ही शुकेश्वर नामक शिवायतन की प्रतिष्ठा करायी थी (अ० १७३)। अ० १७४ में भी तीर्थाभिगमन का माहात्म्य कहते हुए यमुनातट पर स्थित सारस्वत तीर्थ तथा वामन-प्रतिष्ठा का वर्णन किया गया है। अ० १७५ में कृष्णगंगा तट पर स्थित व्यास-आश्रम, मथुरा-तीर्थयात्रा तथा मथुरा में गतेश्वर देव का माहात्म्य वर्णित हुआ है। यहीं कालञ्जर-महादेव, त्रिगर्तेश्वर (वराह १७६।१६) का माहात्म्य कहा गया है। अ० १७७ में कृष्ण-पुत्र शाम्ब के चरित्र का वर्णन करते हुए मथुरा में बटसूर्य का महत्व, सूर्याराधना तथा प्रसिद्ध सूर्य मन्दिरों-कालप्रिय, मूलस्थान व उदयाचल-का वर्णन किया गया है। अन्त में, अ० १७८ में (मथुरा-माहात्म्य) शत्रुघ्न-चरित, राम की मथुरा तीर्थ-यात्रा, और राम द्वारा विश्रान्ति तीर्थ पर सम्पादित महोत्सव से समाप्त होता है।

(८)

इस संक्षिप्त तीर्थ-अध्यायों की इस संक्षिप्त समीक्षा से स्पष्ट है कि मथुरा में विविध देवी-देवताओं से सम्बन्धित तीर्थ थे। विभिन्न तीर्थों का निम्नांकित विवरण विभिन्न देवी-देवताओं से सम्बन्धित था —

१- वैष्णव-तीर्थ

केशव देव — सम्पूर्ण मथुरा-मंडल के अधिपति केशवदेव ही हैं।(क) पद्माकार में स्थित मथुरा की कर्णिका स्थान पर केशव को स्थित कहा गया है।[1] यही केशव देव का मन्दिर था।[2] इसकी पहचान 'कटरा केशवदेव' से होना चाहिये। ग्राउस, कनिंघम और अग्रवाल (डा० वासुदेव शरण) के अनुसार "कटरा केशव देव ही पुरानी बस्ती है।..... कटरा केशव देव ही भगवान् श्रीकृष्णचंद्र की जन्मभूमि है।.... कनिंघम साहब ने कटरा कटरा के प्राचीन इतिहास पर विचार करते हुए अपनी संमति इस प्रकार दी है —

'वर्तमान केशोपुरा मुहल्ले में कटरा स्थान है। इसमें संदेह नहीं कि केशव का प्राचीन मंदिर इसी स्थान पर बना हुआ था।..... केशोपुरा ही वह स्थान है जिसका नाम एरियन ने किलसोबोरा या 'केसोबोरा' और प्लिनी ने किलसोबोरा लिखा है।"[3] डा० अग्रवाल के अनुसार "केशवपुरा का अस्तित्व यूनानियों के आगमन काल में अवश्य था। कटरा केशवदेव की भूमि से जो प्राचीन मूर्ति और पत्थर के टुकड़े मिले हैं उनके आधार पर भी इस बात की पुष्टि होती है कि केशवदेव का स्थान अवश्य ही इतना प्राचीन माना जा सकता है।"[4] डा० अग्रवाल, कटरा से उपलब्ध चंद्रगुप्त द्वितीय के लेख के आधार पर डा० अग्रवाल मानते हैं कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने कृष्ण की जन्मभूमि के स्थान पर अवश्य एक भव्य मंदिर का निर्माण कराया,

(क) नारद, २।८०।५३-५४

१. वराह, १६३।१५-१६, ६२, ६३
२. वही, १५८।७-१०
३. पोद्दार अ० ग्रन्थ, पृ० ७४५,
४. वही, पृ० ७४५,

(७)

add

वह देव-स्थान अत्यंत विशाल और कला का एक अद्भुत उदाहरण होगा। दिन के चौथे भाग (सायं काल) में भगवान् का तेज केशव (की मूर्ति) में रहता था (केशवे मामके तेजो दिनभागे चतुर्थके)[2]
यमुना में स्नान कर केशव देव का दर्शन तथा प्रदक्षिणा करना और केशव के मंदिर में दीप-दान देना पुण्य था।[२क] केशव-कीर्तन से भी पाप नष्ट होते हैं।[२२][3]

वासुदेव

मथुरा वासुदेव (वसुदेव-देवकी पुत्र) की जन्मभूमि है। अतः वासुदेव का तीर्थस्थान और मंदिर अत्यंत महत्वपूर्ण था। यहां वासुदेव अपने चतुर्विध (कृष्ण-वासुदेव, बलभद्र, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न के) मूर्तरूप में स्थित थे। यह पुण्य तीर्थ और मंदिर यमुना के निकट ही स्थित था।[5]

मथुरा मंडल के बारह वनों में भाण्डीर एक पुण्यवन था जहां वासुदेव का मन्दिर था।[6]

ईसा की प्रथम शताब्दी में शक-महाक्षत्रप सुदास के समय भगवान् वासुदेव का पुण्य-स्थल था, जैसा कि तत्कालीन अभिलेख से सिद्ध होता है-

"भगवान् वासुदेव के महास्थान में देवकुल, तोरण और वेदिका वसु के द्वारा स्थापित की गई। वासुदेव प्रसन्न हों। महाक्षत्रप शोडास का राज्य चिरस्थायी हो।"[7]

महाक्षत्रप शोडास-कालीन शिला-लेख मथुरा से सात मील दूर मोरा नामक गांव से प्राप्त अभिलेख में वृष्णि कुल के पंच वीरों के देव गृह और उनकी प्रतिमाओं की स्थापना का उल्लेख मिलता है।[8] वराह पुराण भी वासुदेव के चतुर्व्यूह-रूपों का उल्लेख करता है जिसकी पुष्टि इस अभिलेख से भी

१- पोद्दार अभि० ग्रंथ, पृ० ३४६-३४७
२- वराह, १६३।६३(२)
२क- वही, १५८।९-१०
३- वही, १५२।२४, २५
२२- वही १५५।३०
४- वही, १५२।२२-२४
५- वही, १५२।२८
६- वही, १५३।४४
७- शोडास का मथुरा शिलालेख (सेलेक्ट इं०, सं० २६बी)- वसुना भगवतो वासुदेवस्य महास्थानके देवकुलं तोरणं वेदिका प्रतिष्ठापितं। प्रीतो भगवान् वासुदेवः स्वामिनः महाक्षत्रपस्य शोडासस्य शासनं संवर्त्तयतां।
८- शोडास का मथुरा (मोरा कूप) शिला लेख, (सेलेक्ट इं०, सं० २६ए) — महाक्षत्रपस्य

~~शोडासस्य~~ 7N.

शोडासस्य संवत्सरे .. भगवतां वृष्णीनां पंचवीराणां प्रतिमाः शैलदेवगृहे स्थापिताः ....।

ये चार व्यूहों (कृष्ण/वासुदेव, बलभद्र, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न) की मूर्तियाँ क्रमशः चन्दन, कनक (स्वर्ण), अशोक (वृक्ष) और उत्पल के समान बतायी गयी हैं।[1]

1- वराह, ५८|२४, २५

होती है। अभिलेख में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के अतिरिक्त साम्ब का भी उल्लेख मिलता है। तीन वृष्णि-वीरों की खंडित प्रतिमाएं मिलती भी हैं।

add →

विष्णु - मधुवन को विष्णुस्थान कहा गया है। मधुवन भी बारह बनों में एक पुण्य वन था और इसमें विष्णु का मंदिर था जहां विष्णु का दर्शन किया जाता था।[1] मधुवन को विष्णु (कृष्ण) की जन्मभूमि ~~कहा गया है~~ (लक्ष्मीपतेर्जन्मस्थानं मधुवनं स्मृतम्) को अत्यंत पुण्य तीर्थ कहा गया है।[2]

~~विष्णु के विविध अवतारों के भी मन्दिर मथुरा के विभिन्न तीर्थों में बने हुए थे~~

हरिदेव[3] - मथुरा के पश्चिम में गोवर्धन में हरिदेव का स्थान था।[4] यह देव-स्थान यमुना तट पर ही स्थित था। यहां ~~यमुना~~ ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को स्नान कर हरि(देव) का दर्शन करना पुण्य कर्म था।[5] गोवर्धन गिरि ही हरि-निवास था।[6] हरिदेव का मन्दिर गोवर्धन की पहाड़ी के ऊपर गोवर्धन-परिक्रमा-पथ पर स्थित था।[7]

१- वराह, १५३।३०।
२- पद्म, ६।१८८।१४
३- वराह, १५६।१६१)
४- वही, १६३।१८
५- वही, १५७।४-५
६- नारद, २।८०।१०६
७ वराह, १६४।१४, १५७(१)
८ वही, १७०।२४-२७

[8] गोकर्ण-तीर्थ (शिवमंदिर) के निकट और चक्रपाणि-मठ के पश्चिम में हरि का पंचायतन-स्वरूप में एक प्रासाद बनवाया गया था। इस के साथ ही सुन्दर पुष्प-फलों से युक्त आराम था और इसके चारों ओर प्राकार परिखा भी थी।

सोकर क्षेत्र

यह नारायण क्षेत्र है।[क]

गंगा तट पर स्थित सोकर क्षेत्र भगवत-प्रिय एवं संसार मोक्षण तीर्थ कहा गया है।[1] यहां स्नान करने, जल पीने तथा यहां शरीर छोड़ने वालों की सद्‌गति होती है।[2] यहां अन्य निम्नांकित तीर्थ स्थित थे —

चक्रतीर्थ - यहां चक्र प्रतिष्ठित था। यहां स्नान एवं प्राण त्याग करना पुण्य कर्म था।[3]

सोमतीर्थ - यहां सोम (चन्द्रमा) ने तप से भगवान विष्णु को प्रसन्न किया था। यहां स्नान, तप एवं प्राणत्याग करना पुण्य कर्म है।[4]

गृध्रवट यहां मरने से शृगाली मानुषी योनि को प्राप्त हुई थी।[5]

गृध्रवट - यहां निष्काम भाव से मरे हुए गृध्र ने मनुष्य योनि में जन्म लिया।[6]

आरवोटक तीर्थ - यहां स्नान करना पुण्यप्रद कहा गया है।[7]

वैवस्वत तीर्थ - यहां सूर्य ने संतान प्राप्त करने के लिये तप किया था। यम एवं यमुना का जोड़ा उनसे ही उत्पन्न हुआ। यहां भी स्नान और मरण का महत्व था।[8]

आदित्यतीर्थ - यह गंगा-तट पर स्थित कहा गया है। इसे सूर्य तीर्थ भी कहते थे।[9]

(क) वराह, १३८/३२
१- वही, १३७/६-७, १३५, १४४, १६६, १७८, २०१, १३८/१, २, ३४, ४८, ५०, ५१, ८२
२- वही १३७/८, १०-१७, २१२-२२२
३- वही, १३७/२०-२५
४- वही, १३७/२६-५५
५- वही, १३७/५४-५५, ६७-६८
६- वही, १३७/५६, ७०-७४, २२७-२३०
७- वही, १३७/२२४-२२६
८- वही, १३७/२४०-२५०
९- वही, १३७/१४, ८२
१०- वही, १३८/४९, ८३

तीर्थ-संग्रह

प्राचीन भारतीय जीवन में तीर्थों का विशेष महत्व था। इन विविध तीर्थों में देवायतन और आश्रम थे जहाँ विद्वानों[1], ऋषियों, राजर्षियों तथा तीर्थिकों में समाज (परिषद या गोष्ठी) होते रहते थे। इनमें देश, धर्म, जाति, समाज और मानव-जीवन की समस्यायों पर विचार होता रहता था। यह विचार-विमर्श ही पौराणिक आख्यानों — कथाओं - द्वारा समाज में प्रचारित किया गया था। इस के फल-स्वरूप भारत और इसके बाहर आर्य-भारती का प्रचार होता रहा और पृथिवी के प्राय: सभी भागों पर ब्राह्मणों ने अपने चरित्र की छाप लगा दी।[2] अगस्त्य केवल दक्षिण भारत[3], दक्षिण-पूर्वी एशिया[4] में ही आर्य-धर्म का प्रचार करने गये, प्रत्युत वे मध्य एशिया और चीन[5] में भी भारती-ज्योति ~~के प्रसार~~ से मानव के तामसिक स्वरूप को शुभ्र और उज्ज्वल बनाते रहे।

विभिन्न धार्मिक-क्रियाओं में यज्ञ का महत्व विशेष था। वेदों में भी यज्ञों का महत्व बताया गया है। किन्तु बहुत साधनों, सामान और समय की आवश्यकता के कारण निर्धन लोगों के लिये यज्ञ करना सम्भव नहीं है। इसलिये तीर्थयात्रा (तीर्थाभिगमनं) भी यज्ञफल के समान ही पुण्य कर्म कहा गया है।[6] इसी लिये तीर्थयात्रा धर्म का अंग बनगया।

द-पद्म, १/१२/१३-१७
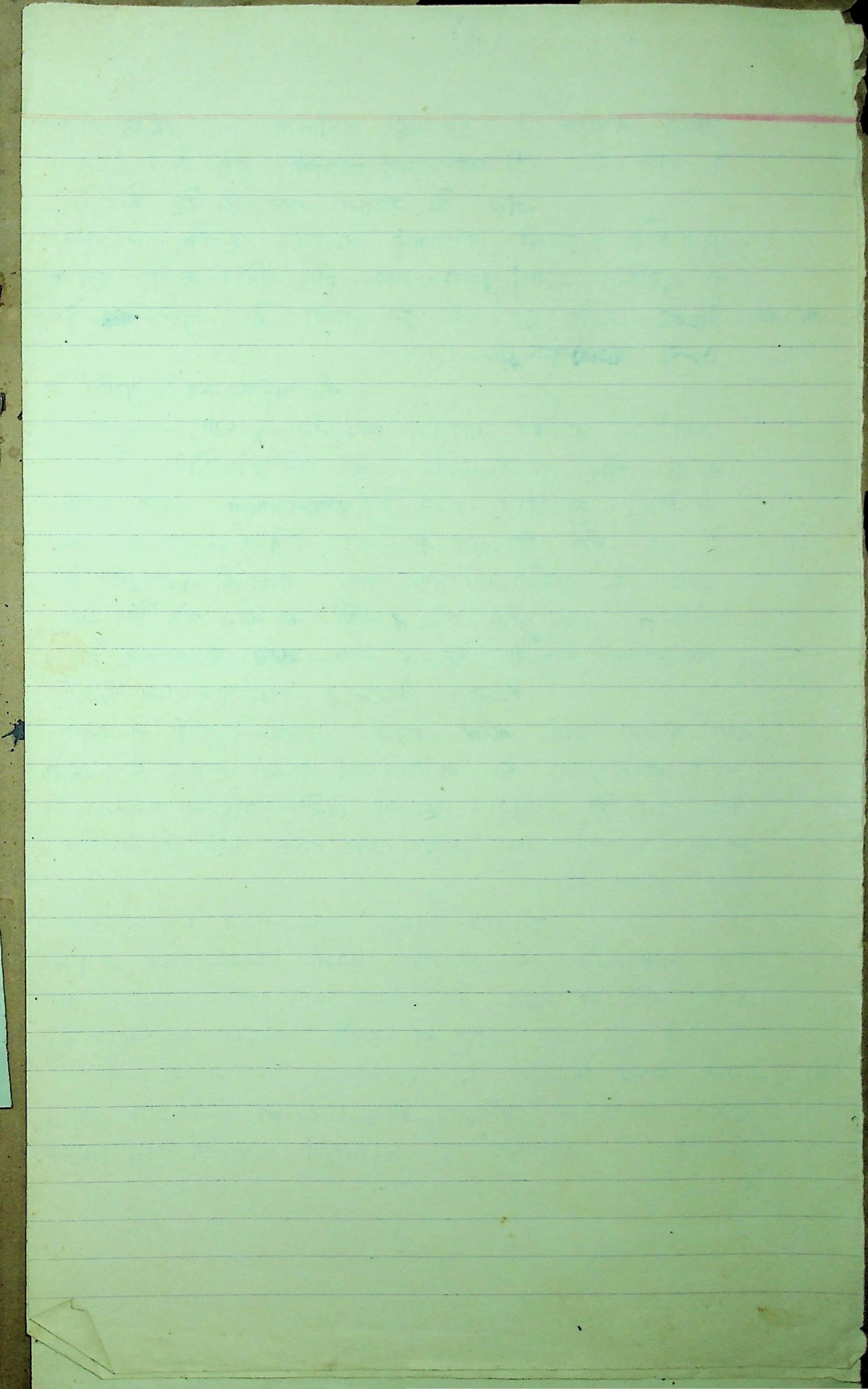
प्रसिद्ध स्थान हैं जिनकी प्राचीनता और प्रसिद्धि अज्ञान के गर्त में पड़ी हुई है। जब ये स्थान नष्ट-भ्रष्ट हो रहे थे पुराणकारों ने इनकी तालिकाएं बनाकर इनके नाम-रूप को सुरक्षित रखा। भी इन तथ्यों को भुला देते हैं

इसीलिये प्राचीन भारतीय संस्कृति की धरोहर रूप में पुराणों ने धर्म, साहित्य, कला और तत्वचिन्तकों के पूर्व वृत्तान्तों को संजोकर सुरक्षित रखा है। वराह पुराण में भी हमें हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्र तक एवं प्रभास से पुरुषोत्तम क्षेत्र तक भारत की कर्मभूमि में अंकित पावन-क्षेत्रों और तीर्थों का वर्णन पाते हैं।

विल्सन, विंटरनिज़ आदि पाश्चात्य विद्वानों तथा हाज़रा आदि भारतीय पुराण-वेत्ताओं ने स्वयं अपने आप इस पुराण को न देख कर अटकल लगाई है। इसके तीर्थ-वर्णन में मथुरा-माहात्म्य विशेष महत्व रखता है। अध्याय १५२-अ०१८० तक मथुरा और इसके तीर्थों का ही वर्णन प्राप्त होता है।

पुरातत्व-खुदाई शुरू करने के पूर्व इन तीर्थ-माहात्म्यों का अध्ययन करना परमावश्यक है। परन्तु विदेशी दृष्टि से भारत को आंकने वाले आर्क्योलाजिस्ट भ्रम में पड़े हैं। यह भ्रम ही हमारी भ्रान्ति का कारण है। यदि केवल मथुरा-माहात्म्य के आधार पर ही मथुरा के प्राचीन स्थलों का सर्वेक्षण और उत्खनन किया जाय, तो अन्तर्वेदी के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ सकता है।
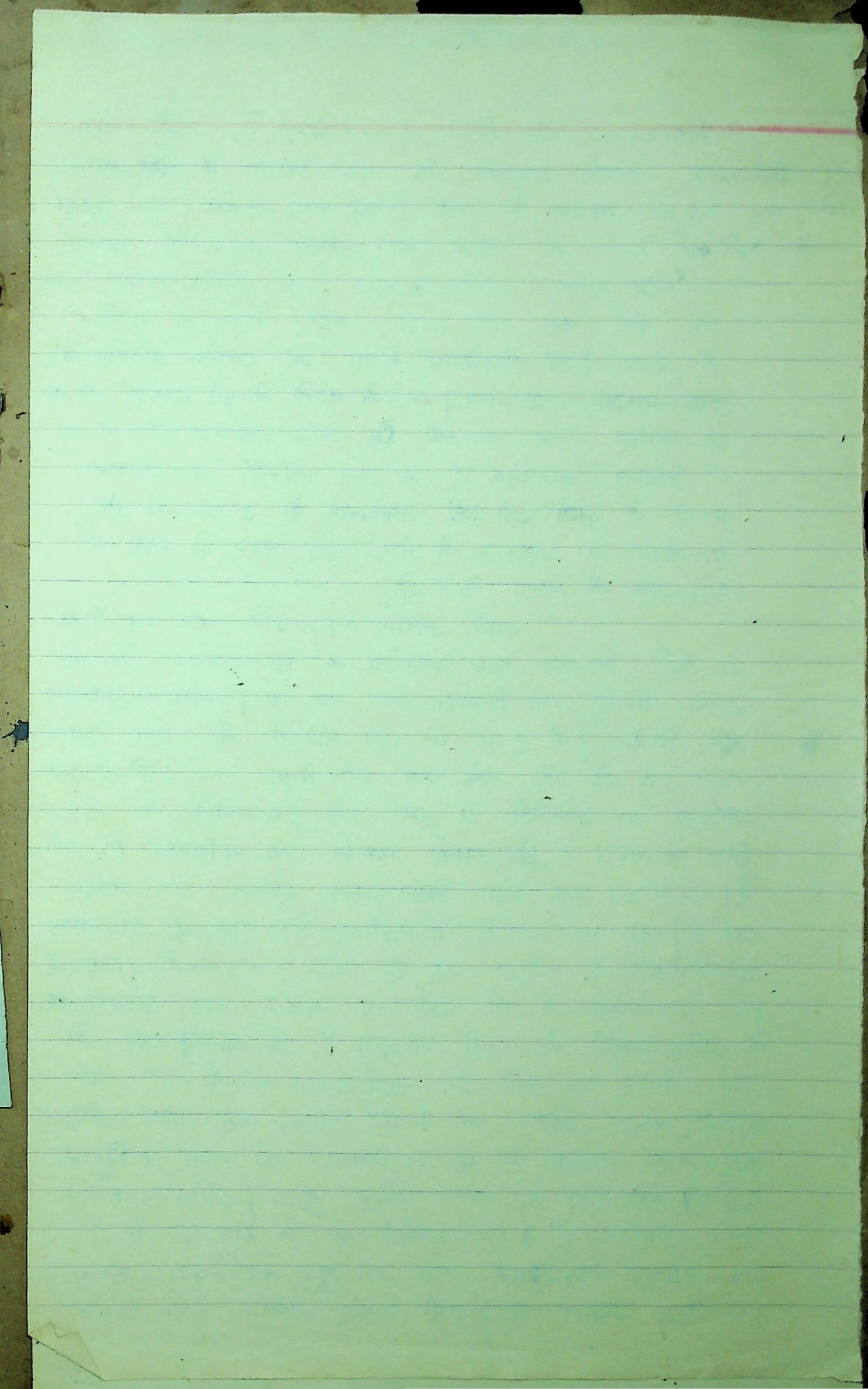
विद्याध्ययन और विचार के भी केन्द्र थे। तीर्थ-स्थलों
तीर्थ-क्षेत्र अध्ययन-अध्यापन और मनन-चिंतन के भी केन्द्र
थे। वहां विभिन्न आश्रम थे जहां विचारों और व्यवहारों का साक्षात्
रूप वहां के समाजों में देखने को मिलता था। इसीलिये बहुत से आश्रम-
मार्कण्डेय आश्रम, दधीच आश्रम, और कपिल-आश्रम आदि
भी तीर्थ बन गये। आज उनके नाम ही सुरक्षित
हैं। शायद किसी पौराणिक कथा में उनके इतिहास पर
कुछ प्रकाश पड़ जाय। मिट्टी के बर्तनों के टूटे टुकड़ों से जब
हम प्राचीन जीवन का चित्र खींचते हैं, तो यह
भी नितान्त आवश्यक है कि उन केन्द्रों का इतिहास
प्रकाश में लायें जो हमें अन्धकार से उजाले की ओर,
मृत-जीवन से अमृतत्व की ओर और असत् से सत् की
ओर जाने की प्रेरणा देते रहे।

इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि
ये तीर्थ विभिन्न देवी देवताओं के प्रिय स्थान थे, जहां
उनके मन्दिरों का निर्माण किया गया था। काल की कुटिलता
और विध्वंसक काल की क्रूरता ने उन मन्दिरों को ढहा दिया। वे
नष्ट होते रहे और उनके रूप भी विकृत कर दिये गये।
साहित्य या अभिलेखों में हमें ऐसे कुछ स्थलों का उल्लेख
मिल भी जाता है; किन्तु उसकी स्थिति भी संदिग्ध हो जाती
है। कालप्रिय एक ऐसा विवादग्रस्त स्थान और मंदिर
रहा है। पर अभिलेख में उल्लिखित होने पर भी इतिहासकार
अंधेरी गलियों में टटोल रहा है और वह नहीं जानता है
कि देव-बरनार्क में भी सूर्य का मंदिर था। प्रतिहार वंश
के इतिहासकारों को नहीं मालुम है कि कान्यकुब्ज में
सूर्य मन्दिर था और इन सूर्य देवता के ही नाम पर
प्रतिहार सम्राट भोज को मिहिर भोज कहा गया। इतिहास-
कार नहीं जानता है कि लुम्बिनि का नाम कैसे भिन्न
देई भी रूमा देवी के नाम प्रसिद्ध हुआ। इतिहासकारों को
नहीं मालुम है कि गुप्तवंशी भितरी से सम्बद्ध भितरी
एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान था जो कुह कार्तिकेय (स्कन्द)
का प्रिय स्थान था। इसी प्रकार अनेक ऐसे प्राचीन

तीर्थ-धर्म और तीर्थ स्नान

'पुण्य देशाभिगमनं पवित्रं परमं स्मृतम्'[1]

श्रेयस्कर बताया गया है।[2] इसीलिये रामायण, महाभारत, पुराणों और स्मृतियों में भी तीर्थ-माहात्म्य का वर्णन मिलता है।

प्राचीन भारत के धार्मिक और सामाजिक जीवन में तीर्थ-यात्रा करना अर्थात् पुण्य-स्थलों में जाना भी पवित्र कर्म माना गया था। तीर्थों का दर्शन, उनमें स्नान करना और उनका माहात्म्य सुनना भी ~~आज भी हम उस प्राचीन परंपरा को प्रचलित पाते हैं~~। तामिलनाड के नर-नारी काशी, वृन्दावन, हरिद्वार और बद्रीनारायण को जाते हुए मिलते हैं। इसी भांति उत्तर से लोग जगन्नाथपुरी, रामेश्वर और द्वारका को जाते हुए मिलते हैं। सैकड़ों यात्री बर्फीले मार्ग को तय कर काश्मीर के पास 'वैष्णो' देवी और सैकड़ों यात्री कामाख्या तथा गंगा सागर को जाते हैं। ~~होली के अवसर पर~~ लाखों नर-नारी नीमसार (नैमिषारण्य), प्रयाग और मथुरा में तीर्थ करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार तीर्थ-यात्रा से देश का ज्ञान और उसके प्रति ममत्व तथा ममत्व-जनित देश-भक्ति का विकास होता था। इससे राष्ट्रीय-एकता और राष्ट्रीयता की पुष्टि होती थी। किन्तु म्लेच्छों (ताजिकों, गर्जनकों, तुरुष्कों) के आक्रमण से तीर्थ भी नष्ट-भ्रष्ट किये गये। ~~पृथ्वीराज-विजय में कवि अपने मित्र पृथ्वीराज (तृतीय) से (विनय) करता है कि पुष्कर म्लेच्छ-भय से नष्ट-प्राय हो रहा था।~~

'भारतवर्ष में पवित्र स्थानों ने अति महत्वपूर्ण योगदान किया है।'[2] तीर्थों में स्नान के अतिरिक्त स्वाध्याय का ~~महत्व था~~ दान, त्याग, तप, और शान्ति से मन को पवित्र करना भी तीर्थ-धर्म था।[3] तीर्थों में स्नानादि के अतिरिक्त स्वाध्याय करने का विशेष महत्व था।[4] अतः तीर्थ-स्थल

१- शान्ति पर्व, १५४।८(१)

~~१- पृथ्वीराज विजय~~, अनुशासन पर्व, २५।१

२- काणे, धर्म० शा० इ०, तृतीय भाग, पृ० १२८८

(३) शान्तिपर्व, २८०/३७

४ शान्ति पर्व, १५२।१४(१) : स्वाध्याय शील: स्थानेषु सर्वेषु समुपस्पृशेत् ॥